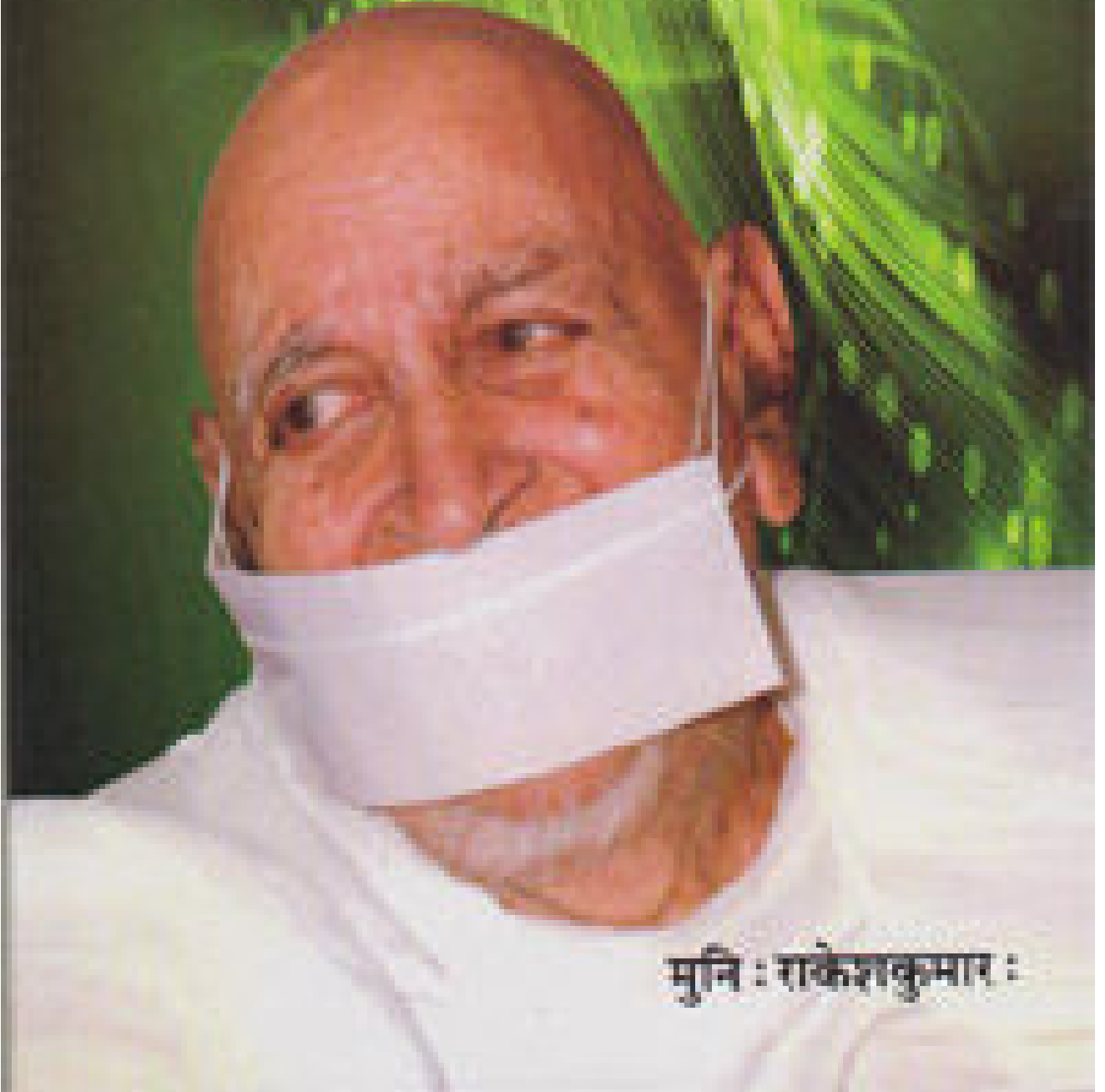


तुलसीकथामृतम्

(संस्कृतभाषायाः लघुकथाशतकम्)

(संस्कृत-हिन्दी)



मुनि : राकेशकुमार :

तुलसीकथामृतम्

(संस्कृतभाषायाः लघुकथाशतकम्)

प्रकाशक : जैन विश्व भारती

पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६

जिला : नागौर (राज.)

फोन नं. : (०९५८९) २२६०८०/२२४६७९

ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

लेखकः

मुनिः राकेशकुमारः

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

प्रथम संस्करण : २०१६

सम्पादकः

मुनिः दीपकुमारः

मूल्य : ६०/- (साठ रुपये मात्र)

मुद्रक :

अहम्

तेरापन्थ धर्मसंघे संस्कृतभाषाया विकासः प्रलम्बकालात् जायमानश्चकास्ति। केचन चारित्रात्मानः अस्यां भाषायां लेखनसमर्थाः समभवन्। मुनि राकेशकुमार महोदयाः संस्कृतकोविदाः विलसन्ति। तेषामदुष्यं वैदुष्यं जनकल्याणकारि भवेत्।

आचार्य तुलसी जन्मशती प्रसंगे 'तुलसी कथामृतम्' ग्रन्थस्य रचना तुलसी गुरुवरं प्रति सार्थकः श्रद्धोपहारः वरीवर्ति। ग्रन्थोऽयं गीर्वाणवाण्याः विद्यार्थिनां विदुषां च कृते विद्यापोषकं भूयात्—शुभाशंसा।

३० अप्रेल २०१६
असम

आचार्य महाश्रमणः

अहम्

तेरापन्थ धर्मसंघ में संस्कृत भाषा का विकास लम्बे समय से होता रहा है। कुछ चारित्रात्माएं इस भाषा में लेखन समर्थ हुई हैं। मुनिश्री राकेशकुमारजी स्वामी संस्कृत भाषा के विद्वान हैं। उनका अदुष्य वैदुष्य जनकल्याणकारी बने।

आचार्य तुलसी जन्मशताब्दी के प्रसंग में 'तुलसी कथामृतम्' ग्रन्थ की रचना गुरुदेव तुलसी के प्रति सार्थक श्रद्धा उपहार है। प्रस्तुत ग्रन्थ संस्कृत भाषा के विद्यार्थियों और विद्वानों के लिए विद्यापोषक बने, शुभाशंसा।

३० अप्रेल २०१६
असम

आचार्य महाश्रमण

पुरोवाक्

तेरापन्थधर्मसंघे संस्कृतभाषायाः विकासः आचार्यश्री तुलसीमहोदयानां काले क्रमशः शिखरारूढः संजातः। ते तु स्वयं संस्कृतभाषायाः लब्धप्रतिष्ठाः विद्वांसः आसन्। संस्कृतसाहित्यस्य या स्रोतस्विनी तैः प्रवाहिता जाता, इदानीं सा सहस्रधारारूपेण गतिमत्यस्ति। अस्य धर्मसंघस्य अनेकाः साध्व्यः अनेके साधवश्च सुरभारत्याः सेवायां समर्पितमनसा संलग्नाः चकासति। मुनिश्री राकेशकुमार महोदयः अस्य धर्मसंघस्य ख्यातनामा संस्कृतभाषायाः लब्धवर्णोऽस्ति। अयं शिक्षाप्रदः कथासंग्रहः 'तुलसीकथामृतम्' तस्य व्यक्तित्वस्य आत्मदर्शोऽस्ति। अस्मिन् ग्रन्थे (१०१) एकोत्तरशतस्य कथानां संग्रहोऽस्ति। कथाः लघ्वाकाराः किन्तु गम्भीरार्थप्रवर्तिन्यः, आचारविचारपरिमार्जिन्यः, लोकद्वयहितसम्पादिन्यः च। मानवजीवनस्य रूपान्तरणे कथायाः महनीयम् महत्त्वमस्ति। कथायाः पठनेन, श्रवणेन च मलिनमपि चित्तममलं भवति। अस्मिन् सन्दर्भे अस्य पुस्तकस्य अनेकाः कथाः उदाहरणीयाः सन्ति। यथा 'एकाक्षी माता' अस्यां कथायां मातुः औदार्यं, पुत्रं प्रति तस्याः स्नेहः सम्यग्रूपेण वर्णितः अस्ति। अस्याः कथायाः निष्कर्षः दर्शनीयः विद्यते। यदा एकाक्षी माता पञ्चत्वमाप्ता तदा तस्याः पाणिना लिखितमेकं पत्रमाप्तम्—प्रियाङ्गज! एकाक्षित्वेन त्वया त्रपाऽन्वभावि। अहं त्वां ज्ञापयामि—तव जनुषो वर्षावधि पश्चात् तव एकस्मिन् नेत्रे दारुणा पीडा जाता। नेत्रचिकित्सकेन निर्णीतम् अस्य चक्षुषो ज्योतिर्विनष्टम्। तदा मया कथितम् अस्य इदं नयनं निष्कास्य मम नयनं प्रत्यारोपितव्यम्। मया तदानीं मातृत्वधर्मो निरूढः। तेन मे मानसे संतुष्टिर्जाता। 'पुत्रः कुपुत्रः स्यात् किन्तु

माता कुमाता न भवति' इति निष्कर्षोऽस्ति अस्याः कथायाः। कथायाः भाषा सरला, सुललिता बोधगम्या चकास्ति। नव्यनव्यानां शब्दानां प्रयोगः, लघुवाक्यविन्यासः, क्रियायाः प्रयोगश्च सर्वत्र दर्शनीयोऽस्ति। इदं पुस्तकं समासबहुलं नास्ति, अतः भावार्थावगमे क्वचिदपि काठिन्यं नास्ति। संस्कृत-ज्ञानाय पुस्तकस्य उपयोगिता सर्वातिशायिनी वर्तते।

मुनिश्रीराकेशकुमारमहोदयः संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी-भाषायाः विशिष्टः प्रतिभासम्पन्नः कोविदोऽस्ति। आचार्यश्रीतुलसी अस्य संस्कृत- शिक्षणस्य प्रेरणास्रोतः आसीत्। तैः प्रेरितोऽयं संस्कृतज्ञः जातः। अस्य संस्कृतज्ञानस्य प्रमाणमस्ति एकस्मिन् दिवसे सहस्रश्लोकानां रचना। इत्थं प्रतीयते यत् सरस्वती तस्य जिह्वेति तिष्ठति। मुनिमहोदयः शतावधान-सम्पन्नोऽप्यस्ति। 'तुलसीकथामृतम्' अस्य अनुपमा कृतिः वर्तते। इयं रचना अस्य प्रतिभायाः निदर्शनमस्ति। तुलसीजन्मशताब्दवसरे इदं पुस्तकं श्रद्धया तस्मै उपहृतमस्ति। इदानीं तेरापन्थधर्मसंघस्य आचार्यपदं चारित्रचूडाचक्रवर्ती, ज्योतिचरणः अणुव्रत- अनुशास्ता आचार्यश्रीमहाश्रमणः समलंकरोति। तेषां कृपादृष्टिः सततं मुनिवर्ये राराज्यते। ज्ञानगरिमगुणगुम्फितः ग्रन्थोऽयम् कर्तव्याकर्तव्य-बोधकः मङ्गलकारकश्च भवेत् इति कामये।

डॉ. राकेशमणि त्रिपाठी

प्रवक्ता-संस्कृत

ब्राह्मी विद्यापीठ

पारमार्थिक शिक्षण संस्था

जैन विश्व भारती परिसर, लाडनूं

पुरोवाक्

तेरापंथ धर्मसंघ में संस्कृत भाषा का विकास आचार्यश्री तुलसी के आचार्य काल में बहुत द्रुतगति से हुआ। वे स्वयं संस्कृत भाषा के लब्धप्रतिष्ठित विद्वान् थे। संस्कृत साहित्य की जो स्रोतस्विनी उन्होंने प्रवाहित की वह हजारों धाराओं में गतिमान हो रही है। इस धर्मसंघ के अनेक साधु-साध्वियाँ संस्कृत भाषा की सेवा में समर्पित मन से लगे हुए हैं। मुनिश्री राकेशकुमारजी इस धर्मसंघ के संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। उनके द्वारा लिखित शिक्षाप्रद कथा-संग्रह 'तुलसीकथामृतम्' उनके व्यक्तित्व का दर्पण है। इस ग्रन्थ में १०१ कहानियाँ संग्रहीत हैं। कहानियाँ आकार में छोटी अवश्य हैं किन्तु गम्भीर अर्थ देने वाली, आचार विचार का परिमार्जन करने वाली और इहलोक तथा परलोक का हित सम्पादन करनेवाली हैं। मानव जीवन के रूपान्तरण में कथाओं का बहुत महत्त्व है। कहानियों के पढ़ने और सुनने से मलिन चित्त भी निर्मल हो जाता है। इस संदर्भ में इस पुस्तक की अनेक कहानियाँ द्रष्टव्य हैं। 'एकाक्षी माता' एक आंख वाली माता इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है। इस कथा में माता की उदारता, पुत्र के प्रति उसका स्नेह वर्णित है। इस कथा का निष्कर्ष दर्शनीय है। जब माता दिवंगत हो गयी, तब उसके हाथ से लिखा हुआ एक पत्र प्राप्त हुआ। पत्र में लिखा था—प्रिय पुत्र! मेरे एक नेत्र नहीं है, इसलिए तुम्हें लज्जा का अनुभव हो रहा है। मैं तुम्हें बताना चाहती हूँ कि तुम्हारे जन्म के एक वर्ष पश्चात् ही तुम्हारे आंख में भयंकर पीड़ा हुई। नेत्र चिकित्सक ने बताया कि इसके आंख की ज्योति नष्ट हो गयी है। तब मैंने चिकित्सक से कहा इसके नेत्र को निकालकर उसके स्थान पर मेरा नेत्र प्रत्यारोपित कर

दिया जाए। उस समय मैंने अपने मातृधर्म का निर्वाह किया तब मुझे बहुत ही संतुष्टि प्राप्त हुई। पुत्र कुपुत्र हो सकता है किन्तु माता कभी कुमाता नहीं हो सकती, यही इस कहानी का निष्कर्ष है। कथा की भाषा सरल, सुललित और बोधगम्य है। नये-नये शब्दों का प्रयोग, लघु वाक्य रचना और क्रियाओं का प्रयोग सर्वत्र कहानी में चमत्कार उत्पन्न कर रहे हैं। पुस्तक में समास बहुलता नहीं है, अतः अर्थ को समझने में कठिनता नहीं है। संस्कृत ज्ञानवर्द्धन के लिए बहुत उपयोगी है।

मुनिश्री राकेशकुमारजी संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी भाषा के प्रतिभासम्पन्न विद्वान् हैं। आचार्यश्री तुलसी इनके संस्कृत शिक्षा के प्रेरणास्रोत थे। उन्हीं की प्रेरणा से मुनिश्री संस्कृत के विद्वान् हो गए। एक दिन में एक हजार श्लोकों की रचना करना इनके संस्कृत-ज्ञान का प्रमाण है। ऐसा प्रतीत होता है सरस्वती उनके जिह्वाग्र में निवास करती है। मुनिश्री शतावधानी भी है। 'तुलसीकथामृतम्' इनकी अनुपम कृति है। यह रचना इनकी प्रतिभा का प्रमाण है। तुलसी जन्म शताब्दी के अवसर पर यह पुस्तक आचार्यश्री तुलसी को सादर समर्पित है। वर्तमान आचार्यश्री चारित्रचूड़ामणि, ज्योतिचरण, अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री महाश्रमण की कृपादृष्टि मुनिश्री पर बनी रहती है। श्रेष्ठ ज्ञान से गुम्फित यह ग्रन्थ कर्तव्याकर्तव्य बोधक और मंगलकारी हो यही कामना है।

डॉ. राकेशमणि त्रिपाठी

प्रवक्ता-संस्कृत

ब्राह्मी विद्यापीठ

पारमार्थिक शिक्षण संस्था

जैन विश्व भारती परिसर, लाडनूँ

स्वकथम्

अहं स्वनामधन्यानां, जनगणप्रतीक्ष्याङ्घ्रिसरोरुहाणाम् आचार्यश्री-
तुलसीमहाभागानां पाणिपद्माभ्यां मुनिदीक्षामग्रहिषम् । यदाहं प्रव्रजितोऽभूवम्,
तदा धर्मसंघे गीर्वाणगिरोऽध्ययनस्य प्रबलोत्साहपूर्णं वातावरणं व्यलसत् ।
आचार्यपुङ्गवानां पुण्यप्रेरणयाऽहमपि तस्याः भाषायाः अभ्यासे मनोयोगेन
संलग्नः । तदानीं सप्तवर्षीयाऽध्ययनस्य पाठ्यक्रमोऽपि निर्मितो जातः ।
आगमदर्शनादिविषयैः सह सुरभारत्याः अध्ययनस्य पाठ्यक्रमे समुचितः
समावेशोऽजनि । मयाऽपि सप्तवर्षीयमध्ययनं व्यधायि ।

पूज्यपादानां गुरुवर्याणां मानसे देवगिरो विकासस्य
अद्भुतोत्कण्ठाऽचकात् । तैरभिव्यक्तेरुत्कर्षार्थं लेखनभाषणयोः विविधाः
उपक्रमाः प्रारब्धाः ।

तैरुपक्रमैर्मम भाषण-लेखनकलायां सम्यक् परिष्कारो जातः । मया
परःशतेषु प्रकाण्डसंस्कृतलब्धवर्णेषु अनेकानि व्याख्यानानि दत्तानि । परं
अनभ्यासेन लेखनकला शिथिलाऽभूत् ।

आचार्यश्रीतुलसीजन्मशतीप्रसङ्गे श्रद्धाञ्जलिरूपेण किञ्चित् सुरभारत्यां
लेखनस्य कल्पना समुदपद्यत । 'तुलसीकथामृतम्' तस्याः एव
सुपरिणामोऽस्ति ।

विश्वस्य विश्वस्यां भाषायां विपुलं कथासाहित्यमुपलभ्यते । गम्भीरं
दुर्बोध्यमपि तत्त्वं कथायाः माध्यमेन सहजसरलतया अवबोधयितुं,
प्रतिपादयितुमर्हामः । पितामही-मातामहीद्वारा नप्तृषु दौहित्रेषु सत्संस्कार-
सुधा-सेचनार्थं कथा-कथनस्य परम्परा सुविश्रुताऽस्ति । अस्य
पुस्तकस्याध्ययनेन मननेन च कस्यापि मानसोपवने सत्संस्कारप्रसूनानि

प्रस्फुटितानि, विकसितानि च भविष्यन्ति तदाऽहं कृतकृत्यो भविष्यामि ।

वात्सल्यवार्धीनां महातपस्विनाम् आचार्यश्रीमहाश्रमणानां आशीर्वादेन
दुष्करं प्रतीयमानमपि सुकरं जाजायते । तेषां वात्सल्यरस वर्षया सुचिन्तितानि
सर्वाणि कार्याणि सफलानि, सुफलानि बोभूयन्ते ।

मुनिसुधाकरमुनिदीपकुमारौ मम प्रत्येकस्मिन् कार्ये सहयोगिनौ स्तः ।
अस्याः पुस्तिकायाः सामग्रीसंकलने, सूचीनिर्माणे च मुनि दीपकुमारेण
अनल्पः श्रमो व्यधायि । एतदर्थं सः साधुवादाहः ।

मुनिः राकेशकुमारः

स्वकथ्य

मैंने जन-जन के पूज्य स्वनाम धन्य आचार्यश्री तुलसी के पवित्र कर-कमलों से मुनि दीक्षा ग्रहण की। जब मैं दीक्षित हुआ, तब तेरापंथ धर्मसंघ में संस्कृत भाषा के अध्ययन का उत्साहपूर्ण वातावरण था। आचार्यप्रवर की पुण्य प्रेरणा से मैं भी तब संस्कृत भाषा के अध्ययन में मनोयोग से संलग्न हो गया। उस समय सप्तवर्षीय पाठ्यक्रम का निर्माण हुआ। उस पाठ्यक्रम में आगम, दर्शन आदि विषयों के साथ सुरभारती के अध्ययन का भी समावेश था। मैंने भी वह सप्तवर्षीय अध्ययन किया।

पूज्यप्रवर आचार्यश्री तुलसी के मानस में संस्कृत के व्यापक विकास का अद्भुत उत्साह था। उन्होंने अभिव्यक्ति के विकास के लिए संस्कृत में लेखन और भाषण के विविध प्रयोग प्रारंभ किए। इससे संस्कृत में लेखन और भाषण की दिशा में मेरा अच्छा विकास हुआ। मैंने वाराणसी, पूना आदि नगरों में सैकड़ों प्रकाण्ड संस्कृत विद्वानों में वक्तव्य दिए। पर अभ्यास के अभाव में मेरे लिखने का क्रम शिथिल हो गया। तुलसी जन्म शताब्दी के पावन अवसर पर श्रद्धांजलि के रूप में संस्कृत में लिखने की कल्पना मानस में उत्पन्न हुई। 'तुलसीकथामृतम्' पुस्तक उसी कल्पना का परिणाम है।

विश्व की सभी भाषाओं में विपुल कथा साहित्य लिखा गया है। गंभीर और जटिल विषयों का कथा के माध्यम से सहज और सरल रूप में प्रतिपादन और विवेचन हो सकता है। दादी और नानी द्वारा पौत्रों और दौहित्रों में संस्कारों के सुधारस का सिंचन करने के लिए कहानियां कहने की परम्परा सर्वत्र प्रसिद्ध है। 'तुलसीकथामृतम्' के स्वाध्याय से किसी के

मानस उपवन में सत्संस्कार के पुष्प विकसित हुए तो मैं स्वयं को कृतकृत्य समझूंगा।

वात्सल्यवारिधि महातपस्वी आचार्यश्री महाश्रमणजी के आशीर्वाद से दुष्कर कार्य भी सहज हो जाता है। उनकी करुणावृष्टि से सोचे हुए सभी कार्य सफल हो जाते हैं।

मुनि सुधाकरजी और मुनि दीपकुमारजी मेरे हर कार्य में सहयोगी हैं। इस पुस्तक के सामग्री संकलन और सूची निर्माण में मुनि दीपकुमारजी ने बहुत श्रम किया है। इसके लिए मैं उन्हें साधुवाद देता हूँ।

मुनि राकेशकुमार

अनुक्रमणिका

१. सत्यं-सुन्दरम्	१८	२२. स्वभाव-परिवर्तनम्	४२
२. पुनीत-प्रेरणा	२०	२३. दर्पणः	४४
३. परामर्शस्य पात्रता	२०	२४. कुतर्कस्य आलम्बनम्	४४
४. संगतेः प्रभावः	२२	२५. दुःखकारणम्	४६
५. मातृदुग्धेन मृत्युः	२२	२६. विचित्रा प्रार्थना	४६
६. शासकः शासितश्च	२४	२७. प्रलोभनम्	४८
७. दुःखदः समाचारः	२४	२८. गुरुर्बुभूषुः	४८
८. कल्ये नहि, अद्य	२६	२९. क्रोधोपशमनम्	४८
९. पाण्डित्यस्य अजीर्णता	२६	३०. अस्थिरो ग्राम-सेवकः	५०
१०. कार्पण्य-प्रभावः	२८	३१. अहितकारिणी जननी	५०
११. श्रमस्य अवमूल्यनम्	२८	३२. अत्यन्ताभावः	५२
१२. प्रकृतेः परिवर्तनम्	३०	३३. शब्दानामाग्रहः	५४
१३. विवेकहीना स्नुषा	३२	३४. विधायक-दृष्टिः	५४
१४. विकेन्द्रीकरणम्	३२	३५. आयतेः कल्पना	५६
१५. गुण-दोष-संघर्षः	३४	३६. दुराग्रही स्नुषा	५६
१६. लक्ष्मणस्य वरदानम्	३४	३७. तनयस्यानुमानम्	५८
१७. पिशाचिनी भार्या	३६	३८. स्वार्थान्धाः सहोदराः	६०
१८. स्वार्थी मनुष्यः	३६	३९. पूर्वग्रहः	६२
१९. मिष्ट-भोजनम्	३८	४०. अपार्थो विवादः	६२
२०. तिलक-भेदः	४०	४१. परीक्षायामनुत्तीर्णः	६४
२१. एकाक्षी माता	४०	४२. क्रियाशून्यं ज्ञानम्	६४
तुलसीकथामृतम्	१३	४३. स्वागतम्	६६
		४४. दण्डस्य त्रिरूपाणि	६६
		४५. कृष्णवाससां रहस्यम्	६८
		४६. परेषां समीक्षा	६८
		४७. वशीकरणमन्त्रः	७०
		४८. शयनंजागरणम्	७०
		१४	तुलसीकथामृतम्

४९. निष्कारणं कर्तव्यं	७२	७६. जीवनशोधनम्	९८
५०. विचार-संक्रमणम्	७२	७७. पुनर्मूषको भव	१००
५१. प्राकृतिकाः गुरवः	७४	७८. प्रगतेः दिशा	११०
५२. विद्या ददाति विनयम्	७४	७९. चरैवेति-चरैवेति	१०२
५३. क्षमाशस्त्रं करे यस्य	७६	८०. अभ्यासेन विकासः	१०२
५४. महाभिक्षुः	७६	८१. यादृक् स्वयं तादृशो ग्रामः	१०४
५५. पिपीलिकाभ्यः प्रेरणा	७८	८२. दिनचर्या	१०४
५६. परम्परा	७८	८३. मूलस्य सेचनम्	१०६
५७. ईर्ष्या	८०	८४. धूर्तोऽतिथिः	१०६
५८. पुरुषार्थहीनः	८०	८५. सूच्याः मार्गणम्	१०८
५९. धर्मस्य परिभाषा	८२	८६. यथा दृष्टिः तथा सृष्टिः	१०८
६०. लेखनी क्षुरी	८२	८७. गुणेष्वदरः कार्यः	११०
६१. कोऽस्ति चण्डालः	८४	८८. नियमितता	११०
६२. ममत्वम्	८४	८९. त्रयो गुरवः	११२
६३. सजातीय-ताडनम्	८६	९०. राक्षसः कोऽस्ति	११२
६४. जीवनस्य द्वे रूपे	८६	९१. रामस्य गवेषणा	११४
६५. शिक्षायाः स्वरूपम्	८८	९२. श्रवणस्य सारम्	११४
६६. समाधानम्	८८	९३. कज्जलस्य कृष्णता	११६
६७. गर्जनं वर्षणम्	९०	९४. बीरबलस्य रूपम्	११६
६८. सफलताया मन्त्रः	९०	९५. कः सुखी	११६
६९. शब्दानामुपहारः	९२	९६. ईश्वरो हसति	११८
७०. मानव-निर्माणम्	९२	९७. सहवासी विजानीयात्	१२०
७१. लघीयानपि महान्	९४	९८. त्रयो भृत्याः	१२०
७२. लक्ष्यस्य निर्धारणम्	९४	९९. वाक्चातुर्यम्	१२२
७३. मानवस्य गवेषणा	९६	१००. बुद्धि-परीक्षा	१२२
७४. मूल्याङ्कनम्	९६	१०१. उपदेशस्य प्रभावः	१२४
७५. सत्यनिष्ठा	९९		
तुलसीकथामृतम्	१५	१६	तुलसीकथामृतम्

१. सत्यं-सुन्दरम्

एको महीक्षित् सौवं चित्रं निर्मातुम् अचिचिन्तत्। तेन नगरे घोषणा विहिता, यः चित्रकारो मदीयं मनोज्ञं चित्रं निर्मास्यति तस्मै पञ्च-सहस्र रूप्यकाणि पुरस्करिष्यामि। त्रयः चित्रकाराः महीपस्य समक्षे समुपस्थिताः। ते राजप्रासादे उपविश्य चित्रं निर्मातुं संलग्नाश्च।

पृथ्वीपतिरेकाक्षः अभूत्। एकेन चित्रकारेण व्यचिन्ति-यदि अहं एकाक्षित्वं प्रदर्शयिष्यामि तदा रमणीयता विनङ्क्ष्यति। द्वितीयेन व्यमर्शि-मया सत्यं तत्त्वमनुसर्तव्यम्। मामकीने चित्रेऽहं भूपस्य एकाक्षित्वं चित्रयिष्यामि। तृतीयेन निर्णीतं-मया सत्यसौन्दर्ययोः रक्षा कर्तव्या। करे कोदण्डमाधाय शरेण लक्ष्यं साधयतो भूपतेः चित्रं निर्मितम्, तेन एकं नेत्रं स्वतः पिहितमजनि।

वसुधेशेन व्यचिन्ति-प्रथमचित्रे सौन्दर्यस्य रक्षा जाता। द्वितीये चित्रे सत्यं सुरक्षितम्। तृतीये चित्रे सत्यसौन्दर्ययोः समन्वयो व्यजनि। अतः तृतीयं चित्रं प्रशस्यम्। राज्ञा तृतीयं चित्रकाराय पुरस्कारः प्रदत्तः। तच्चित्रं राजमान्यं घोषितम्। 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' इदं सुप्रसिद्धं संस्कृतसुभाषितम्। अस्माभिः वाण्यां सत्यसौन्दर्ययोः समन्वयो विधातव्यः।

१. सत्य और सुन्दर

एक राजा ने अपना चित्र बनाने का विचार किया। उसने सारे नगर में घोषणा की, जो चित्रकार मेरा सुन्दर चित्र बनाएगा उसे पांच हजार रुपयों का पुरस्कार दूंगा। तीन चित्रकार राजा के पास आए। उन्होंने राजमहल में बैठकर चित्र बनाना शुरू किया।

राजा एक आंख से काना था। एक चित्रकार ने सोचा—यदि चित्र में कानापन दिखाऊंगा तो सुन्दरता नष्ट हो जाएगी। दूसरे ने सोचा—मुझे सत्य का अनुसरण करना चाहिए। मेरे चित्र में मैं राजा का कानापन दिखाऊंगा। तीसरे चित्रकार ने सत्य और सुन्दर का समन्वय करने का विचार किया। उसने धनुष पर बाण चढ़ाकर निशाना साधते हुए राजा का चित्र बनाया। उसमें एक आंख स्वतः बन्द हो गई।

राजा ने तीनों चित्र देखे। उसने सोचा—पहले चित्र में सुन्दरता की रक्षा हुई है, दूसरे चित्र में सत्य की रक्षा हुई है, तीसरे चित्र में सत्य और सुन्दर का समन्वय हुआ है। इसलिए तीसरा चित्र प्रशंसनीय है। राजा ने तीसरे चित्रकार को पुरस्कार प्रदान किया। उस चित्र को राज मान्य घोषित किया।

‘सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्’ यह संस्कृत भाषा का सुप्रसिद्ध सुभाषित है। हमें वाणी में सत्य और सौन्दर्य का समन्वय करना चाहिए।

२. पुनीत-प्रेरणा

द्वौ छात्रौ विद्यालयात् पठित्वा आगच्छन्तौ आस्ताम्। द्वयोरेको विवेकशीलः, एको मूढोऽभूत्। मूढो निजं सहचरमुदितवान्—त्वं रासभोऽसि प्राज्ञो विद्यार्थी मौनमाधाय तच्छ्रुतवान्। सः स्वसद्वानि आगत्य शान्त्याशनमकार्षीत्। पश्चात् निजां जननीं प्रोक्तवान्—अद्य मम सहपाठिनाऽहं गर्दभोऽवाचि। इदं श्रुत्वा सा कोपारुणा सञ्जाता। तयोदितं—तदा त्वया चपेटेन प्रहारः कर्तव्यः। मातः! यदि अहं चपेटेन प्रहृतवान् तदा मम सहचरस्य कथनं यथार्थं भवेत्। तयाऽकथि सुत! समीचीनं कथं भवेत्। तदाङ्गजेन भणितम्—जननि! यः खरं संतर्जयति तं सः पादेन प्रहरति। यदि अहं प्रहरेयम्, तदा मम सहपाठिनः कथनं समीचीनं भवेत्।

इदं संश्रुत्य जनयित्री हर्षोत्फुल्ला संजाता। तया चिन्तितम्—मम तनयोऽयं लघीयान् संभूयापि मत्तो विवेकेन ज्येष्ठः, श्रेष्ठश्च वरिवर्ति। अनेन प्रेरणां गृहीत्वाऽहं प्रतिजानामि, यत् भविष्यति गाल्याः उत्तरं गाल्या न दास्यामि।

लघीयसोऽपि सदगुणानां प्रेरणा ग्रहीतव्या।

३. परामर्शस्य पात्रता

एकः कपिः भूरुहस्य शाखायामासिष्ट। सः वर्षायामाद्रो भूतः। तदा एका ‘बैया’ नाम्नी चटका तमवोचत्—रे मर्कट! तव हस्तौ पादौ स्तः, मनुजसदृशं तव वपुः विद्यते, त्वम् एकं कुटीरं निर्माहि। तेन वर्षायामपि सुरक्षितो भविष्यसि। अहं लघुर्विहगा तथापि मया नीडं निर्मितम्। तेनाहं वर्षायां सुरक्षिता तिष्ठामि। वानरस्तस्याः परामर्शमाकर्ण्य क्रुद्धः सञ्जातः। तेन रौरूपमाधाय कथितम्—मम समक्षे तव किं महत्त्वम्, त्वं मां किमुपदिशसि? त्वया न ज्ञायते, मम शक्तिस्तु केवलं विध्वंसाय, न तु निर्माणाय। तेन क्रोधारुणेन चटकाया नीडं मुष्टिप्रहारेण त्रोटितम्।

इमं घटनाक्रममालोक्य एकेन कविनोक्तम्—परामर्शः पात्रतां विलोक्य प्रदातव्यः, कुपात्राय प्रदत्तः परामर्शः अहिताय, अनर्थाय च।

२. पुनीत-प्रेरणा

दो छात्र विद्यालय से पढ़कर आ रहे थे। दोनों में एक विवेकशील था, एक मूर्ख था। मूर्ख छात्र ने अपने साथी से कहा—तू गधा है। विवेकशील विद्यार्थी कुछ नहीं बोला, शांति से सुन लिया। उसने घर आकर भोजन कर लिया। इसके पश्चात् अपनी मां से कहा—आज मेरे सहपाठी ने मुझे गधा कह दिया। यह सुनते ही उसकी माँ क्रोधारुण हो गई। उसने कहा—तुझे उसके चपेटे की लगानी चाहिए थी। पुत्र ने कहा—माँ! यदि मैं चपेटे की लगाता तो उसका कहना सही हो जाता। पुत्र! सही कैसे हो जाता? माँ! जब गधे को कोई छेड़ता है तो वह लात की मारता है, यदि मैं सहपाठी को मारता तो गधे के समान बन जाता।

पुत्र के विचार सुनकर मां हर्षोत्फुल्ल हुई। उसने सोचा—पुत्र उम्र में छोटा है, पर विवेक में मेरे से श्रेष्ठ है। इससे प्रेरणा लेकर मैं यह प्रतिज्ञा करती हूँ, कभी भी गाली का उत्तर गाली से नहीं दूंगी।

छोटों से भी सद्गुणों की प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए।

३. परामर्श की पात्रता

एक बन्दर वृक्ष की शाखा पर बैठा हुआ वर्षा में भीग गया। उसी वृक्ष पर एक बैया नाम की चिड़िया बैठी हुई थी। उस चिड़िया ने बन्दर से कहा—तेरे हाथ हैं, पांव हैं, वर्षा हो रही है, तेरा मनुष्यों जैसा शरीर है, तू एक झोंपड़ी बना ले, जिससे तू वर्षा में नहीं भीगेगा। मैं तेरे सामने छोटी हूँ, फिर भी मैंने घोंसला बनाया है, इससे मैं वर्षा में भी सुरक्षित बैठी हूँ। बन्दर उसके परामर्श को सुनकर क्रोधित हो गया। उसने रौद्र रूप बनाकर कहा—रे बैया चिड़िया! मेरे सामने तेरा क्या महत्त्व है, तू छोटे मुंह बड़ी बात बनाती है, मुझे उपदेश देती है। तुझे मालूम नहीं है, मेरी शक्ति विध्वंस के लिए है निर्माण के लिए नहीं। उसने मुट्टी से प्रहार कर चिड़िया का घोंसला तोड़ दिया।

इस घटना को देखकर एक कवि ने कहा—परामर्श सुपात्र व्यक्ति को देना चाहिए, कुपात्र को परामर्श देना अहित और अनर्थ के लिए होता है।

४. संगतेः प्रभावः

एको भूमिपतिः तुरङ्गममारुह्याटव्यां जगाम। अध्वनि एकस्मिन् पादपे एकः कीरः आसिष्ट। नृपमालोक्य सोऽवदत् 'आगच्छ, आगच्छ लुण्टतु लुण्टतु।' पञ्च षट् स्तेनास्तत्र तिरोहिता आसन्। तस्य सांकेतिकान् शब्दान् संश्रुत्य ते तस्कराः नृपं निग्रहीतुं धावितवन्तः। परं भूपेन तुरगो द्रुतगत्या धावयितः। अतः स्तेनाः तं निग्रहीतुं न सफलीभूताः।

पृथ्वीपतिग्रे गतः। तदा एकस्मिन् महीरुहे आसितः एकोऽन्यः शुकः पुनर्मिलितः। सः भूपतिं वीक्ष्य प्रोदितवान्—'स्वागतं स्वागतम्, तस्य मधुरां गिरं संश्रुत्य प्रसन्नचेतसा धरणीशेन सः पृष्टः हंहो कीर! एकोऽन्यः कीरोऽपि पथि मिलितः। युवयोरकृतेः साम्यं प्रतीयते, परं युवयोर्वाण्यां सर्वथा भिन्नता विद्यते। तदा कीरेण प्रत्युत्तरितम्—आवां द्वौ सहोदरौ स्वः। तेन स्तेनानां संगोऽधिगतः, मया ज्ञानिनां सन्यासिनाम्। तदा पृथ्वीपेनावाचि—अयं संगतेः परिणामः।

५. मातृदुग्धेन मृत्युः

एकेन स्तनन्धयेन शिशुना जनन्या दुग्धपानमकारि। तत्पश्चात् तत्कालमेव तस्य वपुः नीलं संजातम्। एतत् परिदृश्य सर्वेऽपि पारिवारिकाः जनाः चिन्तातुरा सञ्जाताः। तस्मिन् विशाले नगरे परीक्षणस्य सूक्ष्मयन्त्राः तथा अनुभविनो चिकित्सकाः अभूवन्। ते शिशोरिमां स्थितिमालोक्य व्यस्मयन्त। तस्य परीक्षणेन ज्ञातं तीव्रतरक्रोधेन रक्ते प्राणघातकं विषम् उत्पन्नम्। तदा चिकित्सकैर्जननी पृष्टा। यदा शिशुः दुग्धपानं कृतवान् तदा तव मनःस्थितिः कीदृशी अभूत्। सोदितवती—तदा मे मानसे श्वश्रू प्रति प्रचण्डः क्रोधाग्निः प्रज्वलितः आसीत्। सकलां घटनामवबुद्ध्य भिषग्भिरुद्घोषितं—यत् मातृदुग्धं नवजीवनं प्रदत्ते, तदेव मृत्योः हेतुः सञ्जातः।

४. संगति का प्रभाव

एक राजा घोड़े पर सवार होकर जंगल में गया। मार्ग में एक तोता वृक्ष पर बैठा हुआ था। वह नरपति को देखकर बोला—‘आओ-आओ, लूटो-लूटो।’ ५-६ चोर वहां छिपे हुए थे। तोते के शब्दों को सुनकर वे चोर राजा को पकड़ने के लिए दौड़े। उसने घोड़े को तेज गति से दौड़ाया इसलिए चोर उसे पकड़ने में सफल नहीं हुए।

राजा आगे गया। उसे एक वृक्ष पर बैठा हुआ दूसरा तोता मिला। वह भूपति को देखकर बोला—‘स्वागतम्-स्वागतम्।’ उसकी मधुर वाणी सुनकर राजा का चित्त प्रसन्न हुआ। उसने उस तोते से कहा—अभी मुझे मार्ग में एक दूसरा तोता मिला, तुम दोनों की आकृति में समानता है, पर वाणी में भिन्नता है। उस तोते ने कहा—हम दोनों भाई हैं। उसे चोरों की संगति मिली, मुझे ज्ञानी संतों की मिली।

नरपति ने कहा—यह संगति का फल है।

५. माँ के दूध से मृत्यु

एक शिशु ने माँ का स्तनपान किया। स्तनपान करते ही उसका शरीर नीला पड़ गया। यह देखकर सारे पारिवारिकजन चिंतातुर हो गए। उस विशाल नगर में परीक्षण के साधन और अनुभवी चिकित्सक थे। वे इसकी स्थिति देखकर विस्मित हो गए। उन्होंने परीक्षण से यह जाना, इसके रक्त में तीव्र क्रोध से उत्पन्न गरल उत्पन्न हो गया है। तब उस शिशु की माँ को पूछा—जब दुग्धपान कराया था तब तुम्हारी मनःस्थिति कैसी थी। तब मेरे मानस में सास के प्रति प्रचण्ड क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो रही थी।

सारी घटना जानकर चिकित्सकों ने इस निर्णय की घोषणा की—जो माँ का दूध नया जीवन प्रदान करता है वह बच्चे की मृत्यु का कारण बन गया।

६. शासकः शासितश्च

जनकः स्वल्पघृतनयेन साकं कस्याञ्चित् रथयायां गच्छन्नासीत्। तदा पञ्चराजपुरुषैरावृतः एको मानवः सम्मुखमागच्छन् मिलितः। स्वल्पानेहः-पश्चात् पञ्चराजपुरुषैः परिवृतः एको ना पुनर्मिलितः। तदा सुतेन जिज्ञासितम्—एतौ पञ्चपुरुषैः सह द्वौ जनौ कौ आस्ताम्? तदा जनयितोदितवान्—प्रथमः स्तेनोऽभूत्। तमनुशासितुं पञ्च दण्डधारिणस्तेन साकमासन्। द्वितीयो महीशो व्यलसत्। तस्य सुरक्षार्थं पञ्च राजपुरुषाः तेन सार्धम् आसन्। पितुः समाधानेन द्वयोः संबंधे सूनूना ज्ञातम्। श्रोत्रं, चक्षुः, घ्राणम्, रसना, स्पर्शः, एतानि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि सन्ति। यः तेषां पराधीनः, तेषां दुरुपयोगं करोति, सः स्तेनोपमः। यः इन्द्रियाणि अनुशास्ति, तेषां सदुपयोगं विधत्ते स पृथ्वीशस्य सन्निभः ज्ञातव्यः।

७. दुःखदः समाचारः

द्वयोर्भूपयो बलं रणभूम्यामाजौ संलग्नमासीत्। सहसा एकेन वसुधेशेन पराजयसंभावनासंवादः कर्णातिथीकृतः। तस्याननं मलिनं प्रभाहीनं च सज्जातम्। तदा तस्य महिष्या औदासीन्यस्य कारणमपृच्छि। महीशेनोदितं मया समरे पराजयस्य दुःखदः समाचारः श्रुतः। तस्य राज्ञी धृतिधारिणी साहसधारिणी अभवत्।

तयोक्तम्—मया अतोऽपि चिन्ताप्रदः समाचारोऽश्रावि। क्षितिपतिः सविस्मयमपृच्छत्—एतादृशः कः समाचारः श्रुतः? तदा राज्ञी अब्रवीत्—अत्रत्यो नरेशः धैर्यशौर्यहीनो जातः। यो धैर्यशौर्यसंपन्नो भवति, विजयश्रीः तमेव वृणोति। महिष्याः उद्गारेण भूपे नवीनोर्जायाः संचारो जातः। सोऽतुलशौर्येण समरभूम्यां गतः, विजयेन्द्रिं वरयित्वा प्रत्यावृत्तः।

साहसपराक्रमोपेतमेव नरं विजयश्रीः परिरभते।

६. शासक और शासित

पुत्र पिता के साथ सड़क पर जा रहा था। सामने से पांच पुरुषों से घिरा हुआ एक व्यक्ति आता हुआ मिला। थोड़ी देर बाद उसी तरह से पांच राजपुरुषों से परिवृत एक मनुष्य और मिला। पुत्र ने पूछा—ये पांच-पांच से घिरे हुए दोनों व्यक्ति कौन थे। पिता ने कहा—पहला मनुष्य चोर था। उसकी निगरानी के लिए पांच दंडधारी पुरुष उसके साथ थे। दूसरा धरापति था, उसकी सुरक्षा के लिए पांच राजपुरुष थे। पिता के समाधान से दोनों के संबंध में पुत्र को सही ज्ञान हुआ।

कान, आंख, नाक, रसना और स्पर्श—पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं। जो इनका दुरुपयोग करता है, वह चोर के समान है, जो इन पर अनुशासन करता है, इनका सदुपयोग करता है, वह राजा के समान है। साहसी और पराक्रमी व्यक्ति का ही विजयश्री वरण करती है।

७. दुखद समाचार

दो राजाओं की सेना युद्धभूमि में युद्ध करने में संलग्न थी। सहसा एक राजा ने अपनी सेना की पराजय की संभावना का समाचार सुना। जिससे उसका मुखमण्डल प्रभाहीन हो गया। उसकी रानी ने इसका कारण पूछा। राजा ने कहा—मेरी सेना पराजित हो रही है। उसकी रानी धैर्य और शौर्य संपन्न थी।

उसने कहा—मैंने इससे भी और दुःखद समाचार सुना है। राजा ने कहा—ऐसा क्या समाचार.....? तब रानी ने कहा—यहां का राजा धैर्य शौर्य विहीन हो गया है। रानी के उद्गारों से नई ऊर्जा का संचार हुआ। वह शौर्य संपन्न होकर युद्धभूमि में गया। वहां से विजयश्री का वरण कर वापिस लौटा। साहसी और पराक्रमी व्यक्ति का ही विजयश्री वरण करती है।

८. कल्ये नहि, अद्य

धर्मपुत्रो युधिष्ठिरो राजसभायां सिंहासने आसीनः आसीत्। एको भूदेवो दक्षिणामादातुमागतवान्। धर्मपुत्रोऽवदत्—अद्य नहि, कल्ये दास्यामि। सः विप्रो निराशो भूत्वा गतः। लघुसहोदराय भीमाय अग्रजस्य एतत् कथनं न रुचितम्। स निजसौधं समागत्य एकोत्सवम् आयोजितवान्। महस्य वाद्यानां ध्वनिः धर्मपुत्रस्य कर्णातिथीभूतः। तदा तेन जिज्ञासितम्—अद्य वाद्यानि कुत्र वाद्यन्ते? तदा परिचारकेण न्यवेदि-धराप! भवतामनुजो भीमोऽद्य महोत्सवम् आयोजितवान्। वाद्यानि तत्रैव वाद्यन्ते। इदं संश्रुत्य धर्मपुत्रेण तत्कालमेव भीमः आहूतः। यदा भीमः समागतः तदा पृष्टः—अनुज! अद्य महोत्सवः कथम् आयोजितः। तदा भीमेन प्रोक्तम्—अद्य मदर्थम् अमितानन्दस्यावासरोऽस्ति। मम ज्येष्ठबन्धुः मृत्युञ्जयः जातः। अनुज! अद्य कथं एतादृशम् अविचारितं प्रलपसि, तव अग्रजस्तु अहमेव। अहं तु मृत्युञ्जयो नास्मि। सहोदर! अद्य एको द्विजो दक्षिणार्थं समागतः। तदा भवतोक्तम्—अद्य नहि कल्ये दास्यामि। मृत्युञ्जयः एव ईदृशीं भाषां वक्तुं समर्थः। धर्मपुत्रेण इदं श्रुत्वा विप्रमाहूय दक्षिणा प्रदत्ता। अस्माभिः 'अद्य नहि कल्ये' एतत् सूत्रं परिहाय 'कल्ये नहि अद्य' एतत् सूत्रम् अनुसर्त्तव्यम्।

९. पाण्डित्यस्य अजीर्णता

द्वौ धीमन्तौ एकस्मिन् सुविश्रुते शिक्षणकेन्द्रे दीर्घकालावधि विद्यार्जनं कृतवन्तौ। अध्ययनं समाप्य पुनस्तौ निजं ग्रामं गन्तुकामौ ततः प्रस्थितौ। प्राचीनयुगे विद्युच्चालितानि साधनानि नाभूवन्। तौ पादाभ्यामेव यात्रां प्रारब्धवन्तौ। रात्रिविश्रामार्थं एकप्रमुखश्रेष्ठिनः सदनं स्थितवन्तौ। श्रेष्ठी उदारचेता अभूत्। तेन द्वयोः स्थानादनयोः सम्यग् व्यवस्था विहिता। श्रेष्ठिना अवसरमालोक्य द्वाभ्यां सह पृथक् पृथक् वार्त्ता कृता। द्वयोः परिचयमवाप्य द्वावपि अपृच्छत्—भवतोरधिको को विद्वान्? द्वौ अहम्मन्यौ आस्ताम्। एकेन प्रोक्तम्—अध्ययनं तु मयैव व्यधायि, मम सहपाठी तु

८. कल नहीं, आज

धर्मपुत्र युधिष्ठिर सिंहासन पर आरूढ़ थे। एक ब्राह्मण दक्षिणा लेने के लिए आया। धर्मपुत्र ने कहा—आज नहीं, कल दूंगा। वह ब्राह्मण निराश होकर चला गया। छोटे भाई भीम को धर्मपुत्र का यह उत्तर रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। भीम ने महल में आकर उत्सव का आयोजन किया। उत्सव के वाद्यों की आवाज युधिष्ठिर के कानों में पड़ी। उसने जिज्ञासा की—यह वाद्यों की ध्वनि कहां हो रही है? तब परिचारक ने कहा—राजन्! आपके लघु भ्राता भीम ने किसी महोत्सव का आयोजन किया है, वाद्य वहां बज रहे हैं। यह सुनकर युधिष्ठिर ने भीम को बुलाया। जब भीम आया तो पूछा—अनुज! आज महोत्सव कैसे आयोजित किया है? तब भीम ने कहा—आज मेरे लिए अमित आनन्द का दिन है। मेरे ज्येष्ठ भ्राता मृत्युंजय हो गए हैं। अनुज! आज बिना सोचे-समझे कैसे प्रलाप कर रहा है? तेरा बड़ा भाई मैं हूं, मैं तो मृत्युंजय नहीं बना हूं। अग्रज! आज एक ब्राह्मण दक्षिणा के लिए आया था। आपने कहा—कल दूंगा। जो मृत्युंजय होता है, कल की बात वही करता है।

धर्मपुत्र ने अपनी भूल स्वीकार की। उसी समय विप्र को बुलाकर दक्षिणा दी। हमें 'कल नहीं, आज' इसे जीवन मंत्र बनाना चाहिए।

९. पाण्डित्य की अजीर्णता

दो विद्वानों ने एक प्रसिद्ध शिक्षण केन्द्र में दीर्घकाल तक विद्यार्जन किया। अध्ययन संपन्न कर दोनों ने अपने ग्राम जाने के लिए प्रस्थान किया। उस युग में विद्युत् चालित वाहन नहीं थे। दोनों पैदल ही चले। मार्ग में एक सेठ का भवन था। उन्होंने वहां रात्रि विश्राम किया। श्रेष्ठी उदारचेता था। उसने दोनों के ठहरने, खाने की समुचित व्यवस्था कर दी। सेठ ने अवसर देख दोनों से पृथक्-पृथक् बात की। दोनों का परिचय प्राप्त कर सेठ ने पूछा—आप दोनों में अधिक विद्वान् कौन है? दोनों ने अपना अध्ययन अधिक बताया। एक ने अपने साथी को गधा बताया एक ने बैल।

रासभोऽस्ति। द्वितीयेन अवाचि—मम सहचरस्तु सौरभेयः। श्रेष्ठी द्वयोरुत्तरं निशम्य निराशः सञ्जातः। एकस्य भोजनपात्रे तृणपत्राणि परिवेष्टितानि, एकस्य भोजनपात्रे तुषौघः परिवेष्टितः। एतद् विलोक्य द्वावपि क्रोधारुणौ संभूतौ। ताभ्यामुक्तं—किमावां पशू स्वः। तदा श्रेष्ठिनाऽकथि—मह्यम् किं कुप्यतः। भवन्तौ यथा परस्परं परिचयं प्रदत्तवन्तौ—तथैव मया भोजनं परिवेष्टितम्। एतच्छ्रुत्वा तौ लज्जितौ जातौ। द्वावपि धिषणाधनौ श्रेष्ठिनः समक्षे प्रतिज्ञातवन्तौ, वयमायतौ एतादृशीं त्रुटिं न विधास्यामः। तत्पश्चात् श्रेष्ठिना मिष्टान्नं परिवेष्टितम्। तौ भुक्त्वा हर्षितमनसा ततः प्रस्थितौ। यत्र असूयाया असहिष्णुतायाश्च मनोवृत्तिः स्यात्, तत्र पाण्डित्यं लज्जितं भवति।

१०. कार्पण्यप्रभावः

एको मनुजो बहुलः कृपणोऽभूत्। तस्य कृते दानं मरणसन्निभम्। एकदा सः व्याकुलः व्यथितश्च अभूत्। अर्धाङ्गिनी तस्य व्याकुलतां विलोक्य प्रोदितवती—प्रियवर! अद्य भवानुदासीनः कथम्? किं कस्मै किमपि दत्तम्? किमपि वस्तु हस्तात् पतितम् वा? तेन प्रत्युक्तम्—न मया कस्मै किमपि प्रदत्तम्, न किमपि पतितम्। मया कोऽपि ददानो दृष्टः, तेनाहं व्यथितो जातः।

विचित्रः कार्पण्यप्रभावः।

११. श्रमस्य अवमूल्यनम्

पितुर्निधनात् पश्चात् अनल्पं श्रमं विधाय जननी एकाकिनं तनयं पाठितवती। तस्याध्ययनार्थं प्रभूतः आर्थिकः भारः ऊढः। पुत्रेण उच्च-स्तरीया शिक्षाऽधिगता। स सर्वकारे विशिष्टोऽधिकारी नियुक्तः समभवत्। एकशिक्षितकन्यया सह पाणिग्रहणस्य प्रस्तावः तेन उपलब्धः। तेन व्यचिन्ति—यदि ममोद्वाहो भविष्यति तदा मम जनयित्री विश्राममाप्स्यति, गृहकार्यभारात् निवृत्ता भविष्यति। तेन प्रस्तावः स्वीकृतः, परिणयः सञ्जातः। साऽपि सर्वकारस्य अधिकारिणी आसीत्। सा गृहकार्येषु सर्वथा अनभिज्ञाऽसीत्। जनन्याः श्रमे सा किमपि साहाय्यं नो अकार्षीत्।

सेठ दोनों का उत्तर सुनकर निराश हुआ। जब भोजन का समय हुआ तब एक की थाली में हरी घास परोसी, एक की थाली में भूसा। यह देखकर पंडित क्रोधारुण हो गए। दोनों ने कहा—क्या हम पशु हैं। सेठ ने कहा—आपने एक दूसरे का जैसा परिचय दिया मैंने वैसा ही भोजन परोसा है। यह सुनकर दोनों लज्जित हो गए। दोनों ने अपनी त्रुटि का अनुभव किया और भविष्य में ऐसा व्यवहार नहीं करने की प्रतिज्ञा ली। बाद में सेठ ने उनको मिष्टान्न का भोजन कराया और हर्षित मन से उनको विदा दी।

जहां ईर्ष्या और असहिष्णुता होती है वहां पाण्डित्य लज्जित होता है।

१०. कार्पण्य का प्रभाव

एक मनुज बहुत कृपण था। उसके लिए देना और मरना बराबर था। एक दिन वह व्याकुल और व्यथित था। अर्धांगिनी ने उसकी व्याकुलता देखकर कहा—प्रियवर! आज आप उदासीन क्यों हैं? क्या किसी को कुछ दे दिया है या आपके हाथ से कुछ गिर गया है? उसने कहा—मैंने किसी को कुछ भी नहीं दिया है, न मेरे हाथ से कुछ गिरा है, पर मैंने किसी को कुछ देते हुए देख लिया, इससे व्यथित हूँ।

कृपणता का विचित्र प्रभाव है।

११. श्रम का अवमूल्यन

पिता की मृत्यु के बाद माँ ने बहुत श्रम कर पुत्र को पढ़ाया। उसके अध्ययन के लिए भारी आर्थिक भार उसने वहन किया। पुत्र ने उच्चस्तरीय शिक्षा ग्रहण की। वह सरकार में प्रमुख अधिकारी नियुक्त हुआ। एक शिक्षित कन्या की ओर से शादी का प्रस्ताव आया। उसने सोचा—मेरा पाणिग्रहण होने से मेरी माँ को विश्राम मिलेगा। घर के काम से छुटकारा मिलेगा। उसने वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, शादी हो गई। उसकी पत्नी भी सरकार में अधिकारी थी। उसने सास के श्रम में किसी प्रकार का सहयोग नहीं किया।

तनयेन विचारितम्—मम जननी वृद्धा, तथापि सकलं सदनं प्रतिदिनं संमार्जन्या प्रमार्ष्टि, एतत् मम कृते लज्जास्पदम्। तदा तेन सहचरिं प्रेरयितुं जनन्या सह एका योजना निर्मिता। तेन कथितम्—अहं कल्पे प्रमार्जनसमये संमार्जनीं ग्रहीष्यामि, तदा त्वया वक्तव्यम् एतत् कार्यं तु नारीणाम्। तदाहं कथयिष्यामि जननि! त्वं वृद्धाऽजनि। स्वल्पकालावधि आवामेवं संमार्जन्यर्थम् आग्रहं करिष्यावः। आवामालोक्य संमार्जनार्थम् मम पत्नी प्रेरिता भविष्यति। एवं विचार्य ताभ्यामिदं नाटकं कृतम्। स्नुषा उपरिष्ठात् इदं वीक्ष्य स्वपतिमजल्पीत्—किं युवां व्यर्थं विवादं कुरुथः? एकस्मिन् दिने अम्बा प्रमाक्ष्यति, एकस्मिन् दिने त्वया प्रमार्ष्टव्यम्। भार्यायाः कथनमाकर्ण्य पतिः निराशः सञ्जातः। तेन चिन्तितं श्रमस्य अवमूल्यनम् आधुनिकशिक्षायाः दुष्परिणामोऽस्ति।

१२. प्रकृतेः परिवर्तनम्

एको वायसो नभसि उड्डयमानः आसीत्। तस्य अकस्मात् पिकेन सह मेलनं जातम्। तेन पृष्ठम्—काक! साम्प्रतं कुत्र गच्छसि? तेन प्रोक्तम्—अहमेतं ग्रामं विहाय अन्यत्र यामि। बन्धुवर! ग्रामः किमर्थं त्यज्यते। ध्वाङ्क्षेनोदितं—अत्र मां कोऽपि न सम्मन्यते। यत्रापमानं तत्र निवसनं कष्टप्रदम्। ग्रामत्यागेन सह कटुवाणीमपि जहीहि, एष मे परामर्शः। कटुवचनं मे स्वभावः, तत्परिवर्तनमसंभवम्।

एकाक्षोऽन्यत्र गतवान्। अनुषण्मासं काकलीरवेण सह काकः पुनर्मिलितः। तेन अपृच्छ—वायस! कियन्तो ग्रामाः परिवर्तिताः, तेन सखेदमवाचि—षड् ग्रामाः परिवर्तिताः। कुत्रापि तव सत्कारोऽभूत्? कुत्राऽपि न जातः। कोकिलेन अवाचि—यावत् कठोरवचनं न त्यक्ष्यसि तावत् तव सर्वत्र न्यक्कार एव भविष्यति।

सर्वेऽपि लोकाः परिस्थितिं परिवर्तयितुं समुत्सहन्ते, परं प्रकृतेः परिवर्तनं ततोऽपि अधिकं अपेक्षितम्।

पुत्र ने सोचा—मेरी माँ इतनी वृद्ध होकर भी झाड़ू-बुहारी करती है यह मेरे लिए लज्जास्पद है।

अपनी पत्नी को प्रेरणा देने के लिए माँ के साथ एक योजना बनाई। उसने जननी से कहा—कल जब तुम झाड़ू निकालोगी तब मैं मनुहार करूंगा। तब कहना झाड़ू निकालना स्त्रियों का काम है। मैं कहूंगा—तुम वृद्ध हो गई हो। झाड़ू के लिए हम दोनों को आग्रह करते देखकर मेरी पत्नी को प्रेरणा मिलेगी। दोनों ने ऐसा नाटक किया। बहूरानी ऊपर खड़ी देख रही थी। उसने पति से कहा—क्यों समय व्यर्थ गंवाते हो? एक दिन माताजी निकाल लेगी, एक दिन आप निकाल लेना। अपनी अर्धांगिनी का उत्तर सुनकर पति बहुत निराश हुआ। आज की शिक्षा प्रणाली से श्रम का अवमूल्यन हो गया है।

१२. प्रकृति का परिवर्तन

एक कौआ आकाश में उड़ता हुआ जा रहा था। उसकी अकस्मात् कोयल से भेंट हो गई। उसने पूछा—कौआ भाई! कहां जाते हो? उसने कहा—मैं गांव छोड़कर जाता हूँ। कोयल ने कहा—गांव क्यों छोड़ते हो? यहां मेरा कोई सम्मान नहीं करता। जहां अपमान हो वहां रहना कष्टप्रद होता है। कोयल ने कहा—मेरा एक परामर्श है—गांव छोड़ने के साथ कड़वा बोलना भी छोड़ दे। कौए ने कहा—यह मेरा स्वभाव है, इस स्वभाव का बदलना असंभव है।

कौआ अन्यत्र चला गया। छह महीनों के बाद कौए की कोयल से फिर भेंट हो गई। उसने पूछा—कौआ! कितने गांव बदले, उसने खिन्न होकर कहा—मैंने ६ गांव बदले। कहीं भी तेरा सत्कार हुआ? कहीं भी नहीं हुआ। जब तक बोली का सुधार नहीं करेगा, तब तक तेरा सत्कार कहीं भी नहीं होगा। सभी परिस्थिति का परिवर्तन करना चाहते हैं, पर प्रकृति का परिवर्तन उससे भी अधिक जरूरी है।

१३. विवेकहीना स्नुषा

श्वश्रूः स्नुषामादिष्टवती—अद्य तीव्रवात्या समागता, तेन सर्वं गृहं धूल्या भृतम्। त्वमुपरिष्ठात् सदनस्य प्रमार्जनं कुरुष्व। प्रमार्ज्य सर्वा धूलिं एकस्मिन् पात्रे एकत्र कुरु। तत्पश्चात् जनं निरीक्ष्य नीचैः प्रक्षिप। सा श्वश्रूनिर्देशानुसारं धूलिभृतं पात्रं हस्ते गृहीत्वा नीचैः पुनः पुनः ददर्श। स्वल्पावधि पश्चात् एकः सर्वकारस्य वरिष्ठोऽधिकारी आगतः। सर्वा धूलिः तस्य शिरसि प्रक्षिप्ता। स धूलिधूसरितोऽधिकारी कोपारुणो भूत्वा तस्याः श्वश्रूमपालब्धवान्। इदं श्रुत्वा श्वश्रूः तस्यै रुष्टाऽभूत्। साऽवोचत्—भवत्याहं निर्दिष्टा—यत् नीचैः मनुष्यमालोक्य धूलिः प्रक्षेप्तव्या। त्वया मम कथनस्य तात्पर्यं नावबुद्धम्। मानवानपहाय धूलिः प्रक्षेप्तव्या—मया एवं निर्दिष्टम्।

विवेकहीनान् प्रतिबोधयितुं न कोऽप्यर्हः।

१४. विकेन्द्रीकरणम्

एकस्मिन् गृहे प्रतिदिनं दधिमन्थनं सञ्जायते स्म। पार्श्वस्थ-परिवाराणां योषितः तत्र तक्रमादातुमायातवत्यः। एकदा विलोडनं न जातम्। एका महिला तक्रं ग्रहीतुमागता। तदा स्नुषा प्रोदितवती, भगिनि! अद्य तक्रं नास्ति। उत्तरं श्रुत्वा सा पुनर्निजं सदनं जिगमिषुः प्रत्यवलत्। मार्गं श्वश्रूः मिलिता। तयाऽपृच्छि—का वार्त्ता? अद्य तक्रं नास्ति, भवतः पुत्रपत्न्या कथितम्। श्वश्रूः अवदत्—मया साकं त्वम् आगच्छ। सा प्रसन्नीभूय तया सह आगता। गृहमागत्य श्वश्रूः तामजल्पत्—अद्य मन्थनं न जातम्, अतः तक्रं नास्ति। पार्श्वस्था योषित् सखेदमब्रवीत्। एतत् तव स्नुषा प्रागेव अचीकथत्। तदा भवत्याऽहं पुनः किमर्थमानीता। मम गेहे स्वीकृति-निषेधकथनस्य अधिकारः केवलं ममैव विद्यते। अतः मया त्वमानीता।

एतन्निशम्य सा वामा मनसि उपहसन्ती स्वसदनं प्रत्यवलत्। परिवारस्य विकासाथम् अधिकाराणां विकेन्द्रीकरणमपि आवश्यकम्।

१३. विवेकहीन पुत्रवधू

सास ने पुत्रवधू को आदेश दिया—आज तेज आंधी के कारण सारा घर धूल से भर गया है। तुम ऊपर के मकान की सफाई कर लो। सारी धूल को एक पात्र में एकत्रित कर लो। उसके बाद आदमी देखकर नीचे डाल देना। वह सास के निर्देश के अनुसार रेत से भरा पात्र लेकर नीचे बार-बार देखने लगी। थोड़ी देर में एक सरकारी अधिकारी उधर से आया। उसके सर पर धूल से भरा पात्र उंडेल दिया।

उस धूल-धूसरित अधिकारी ने कोपारुण होकर उसकी सास को उपालंभ दिया। यह सुनकर सास बहूरानी पर रुष्ट हुई। उसने कहा—बहूरानी! मैंने कहा था—नीचे आदमी को देखकर धूल डालना। बहू ने कहा—आपने जैसा कहा था मैंने वैसा ही किया। सास ने खेद के साथ कहा—तुमने मेरे कहने का तात्पर्य नहीं समझा। मैंने कहा था—आदमी को बचाकर डालना।

विवेक हीन को समझाने में कोई समर्थ नहीं है।

१४. विकेन्द्रीकरण

एक घर में रोजाना बिलौना होता था। पड़ोस की महिलाएं वहां छाछ लेने आती थी। एक महिला एक दिन छाछ लेने आई। उस घर की बहूरानी ने कहा—आज छाछ नहीं है। वह बहिन वापस अपने घर जाने लगी। मार्ग में सास मिल गई। उसने उस बहिन को पूछा—क्या बात है? उसने कहा—आपकी बहूरानी ने कहा—आज छाछ नहीं है। सास ने कहा—मेरे साथ चल। वह प्रसन्न होकर सास के साथ आई। सास ने घर आकर कहा—आज बिलौना नहीं किया, छाछ नहीं है। पड़ोसन ने कहा—यह बात तो आपकी बहूरानी ने ही कह दी थी। आप मुझे यहां लेकर क्यों आईं। सास ने कहा—हमारे घर में हां, ना कहने का अधिकार मुझे ही है।

यह सुनकर वह बहिन हंसती हुई अपने घर चली गई। परिवार के विकास के लिए अधिकारों का विकेन्द्रीकरण जरूरी है।

१५. गुण-दोष संघर्षः

एको मानवोऽरण्ये भ्रमन्नासीत्। तत्र चतस्रो वामा मिलिताः। तेन प्रथमा पृष्ठा—तव किन्नामधेयम्? तयाऽवाचि—अहं बुद्धिरस्मि। त्वं कुत्र निवससि? अहं नृणां मस्तिष्के निवसामि। द्वितीया योषित् अपृच्छि—तव काऽभिधा—अहं लज्जास्मि। कुत्र निवससि? अहं नयनयो निवसामि। तृतीया पृष्ठा—तव काह्वा? अहं धृतिरस्मि। तव क्व निवासः? अहं मनुष्याणां हृदये तिष्ठामि। चतुर्थी सीमन्तिनीमपृच्छत्—तव काऽऽख्या? अहं नीरोगताऽस्मि। तव कुत्र निवासः। अहमुदरे वसामि।

स ना अग्रे जगाम। तत्र चत्वारः पुरुषाः मिलिताः। तेन प्रथमः पृष्ठः—तव किन्नामधेयम्? अहं क्रोधोऽस्मि। त्वं कुत्र निवससि। अहं मस्तिष्के निवसामि। मस्तिष्के तु बुद्धिः निवसति, त्वं कथं वससि? यदा अहं प्रविशामि तदा सा ततः पलायते। द्वितीयं मनुजमप्राक्षीत्—तव काऽभिधा? अहं लोभोऽस्मि, त्वं कुत्र निवससि? अहं नयनयोर्निवसामि, नयनयोस्तु त्रपा निवसति, त्वं कथं निवससि। यदाऽहं प्रविशामि, तदा सा ततः पलायते। तृतीयं मानवं पप्रच्छ तव काह्वा—अहं भयमस्मि। तव क्व निवासः अहं हृदये तिष्ठामि। हृदये तु धृतिर्निवसति। यदाऽहं प्रविशामि तदा सा ततः प्रधावति? चतुर्थी नरः पृष्ठः—तव किन्नामधेयम्—अहम् आमयोऽस्मि। त्वं कुत्र निवससि? अहमुदरे निवसामि। तत्र तु नीरोगता निवसति। यदाहमागच्छामि, तदा सा ततः पलायते।

जीवने गुणावगुणयोः संघर्षः सनातनः। यदाऽवगुणास्तत्र प्रविशन्ति तदा गुणाः ततः पलायन्ते।

१६. लक्ष्मणस्य वरदानम्

रामस्य अरण्यगमनं विज्ञाय लक्ष्मणः स्व जनन्याः सुमित्रायाः समीपे समागतः, तस्यै निवेदितवान् च। अम्ब! अहमेकं वरदानं लिप्सामि। एकं

१५. गुण और दोष का संघर्ष

एक मनुष्य जंगल में जा रहा था। उसे चार बहिनें मिली। उसने पहली बहिन से पूछा—तुम्हारा नाम क्या है? उसने कहा—मेरा नाम बुद्धि है। तुम कहां रहती हो? मैं मनुष्य के दिमाग में रहती हूं। दूसरी बहिन को पूछा—तुम्हारा क्या नाम है? मेरा नाम लज्जा है। तुम कहां रहती हो? मैं आंख में रहती हूं। तीसरी बहिन को पूछा—तुम्हारा क्या नाम है? मेरा नाम हिम्मत है। तुम कहां रहती हो। मैं मनुष्य के दिल में रहती हूं। चौथी से पूछा—तुम्हारा क्या नाम है? मेरा नाम है तन्दुरुस्ती है। कहां रहती हो? मैं पेट में रहती हूं।

वह मनुष्य आगे चला। उसे चार पुरुष मिले। उसने पहले पुरुष को पूछा—तुम्हारा नाम क्या है? मेरा नाम है क्रोध, कहां रहते हो? मैं मस्तिष्क में रहता हूं। मस्तिष्क में बुद्धि रहती है, तुम कैसे रहते हो? जब मैं आता हूं तब बुद्धि वहां से विदा हो जाती है। दूसरे पुरुष को पूछा—तुम्हारा क्या नाम है? मेरा नाम लालच है, कहां रहते हो? मैं आंख में रहता हूं। आंख में लज्जा रहती है तुम कैसे रहते हो? जब मेरा प्रवेश होता है तब लज्जा वहां से नौ दो ग्यारह हो जाती है। तीसरे पुरुष को पूछा—तुम्हारा क्या नाम है? मेरा नाम है भय। तुम कहां रहते हो? मैं दिल में रहता हूं। दिल में हिम्मत रहती है, तुम कैसे रहते हो? जब मैं आता हूं तब हिम्मत वहां से प्रस्थान कर देती है। चौथे पुरुष को पूछा? तुम्हारा क्या नाम है? मेरा नाम है रोग। तुम कहां रहते हो? मैं पेट में रहता हूं। पेट में तन्दुरुस्ती रहती है तुम कैसे रहती हो। जब मेरा आगमन होता है, तब वह वहां से प्रस्थान कर देती है।

जीवन में गुण और दोष का इस प्रकार संघर्ष चलता रहता है। जब अवगुणों का प्रवेश होता है, तब गुण वहां से पलायन कर देते हैं।

१६. लक्ष्मण का वरदान

राम का अरण्य-गमन जानकर लक्ष्मण अपनी माँ सुमित्रा के पास आए और कहा—मैं आपसे एक वरदान चाहता हूं। पुत्र! एक वरदान मेरी

वरदानं भगिनी कैकेयी याचितवती। तेन सर्वस्मिन् परिवारे हाहाकारः सञ्जातः। साम्प्रतं वरदानस्य नामग्रहणमपि न सांप्रतम्। यदि वरदान प्रदाने एक क्षणमपि विलम्बो भविष्यति तदा यावज्जीवनं वयमनुशयिष्यामहे। तदा सवित्री अकथयत्—एतादृशं किं वरदानम्? तदा सौमित्रेणोदितं—अहं सीतारामाभ्यां सह कानने जिगमिषामि। एतन्निशम्य सुमित्रा हर्षोत्फुल्लाऽजनि। सोवाच—तनय! ब्रज, ब्रज, तव विचारं कर्णातिथीकृत्य मे मनः पुलकितं बभूव। त्वाद्दृशमङ्गजमाप्त्वाऽहं धन्या कृतपुण्या अभूवम्।

१७. पिशाचिनी भार्या

एकः पुरुषः स्वार्धाङ्गिन्याः क्रूर स्वभावेन अतीव दुःखितोऽभूत्। तेन सः गृहे प्रतिदिनं विलम्बतः समागच्छत्। तथा अनेकशः क्षिप्रमागन्तुं धवोऽवाचि। परं तेन तस्य कथनमुपेक्षितम्। सा एकदा कान्तं भाययितुं पिशाचिन्या रूपमाधाय श्मसानभूम्यामासांबभूव। यदा रमणः आवसथं गन्तुम् उपश्मसानमागतः तदा पिशाचिनीरूपधारिणी तस्य भार्या भयावह-ध्वन्याऽजल्पत्—अरे! इतः आगच्छ, आगच्छ। तदा सोऽपि निर्भीकतया मधुरस्वरेण अकथयत्—अहं प्रस्तुतोऽस्मि, भवत्याः कां सेवां विदधे? तयोक्तम्—त्वं मत्तः किं नो बिभेषि? अहं त्वत्तः कथं बिभेमि। आवयोः परस्परं संबन्धो वेविद्यते। तयोदितम्—कः संबन्धः? तेन भणितम्—मम गृह स्वामिनी तव ज्येष्ठभगिनी अस्ति।

यासां योषितां स्वभावः भयावहः रौद्रश्च, ताः पिशाचिनीस्वरूपा एव।

१८. स्वार्थी मनुष्यः

एको मनुष्योऽरण्ये गच्छन्नासीत्। तेन एको व्याघ्रः आगच्छन् दृष्टः। ना स्वरक्षार्थमेकं भूरुहमारुरोह। व्याघ्रो मनुजं भोक्तुं धावितवान्। परं तं क्षितिरुहमारूढमवलोक्य स निराशो विषण्णाश्च जज्ञे! तत्र विटपिनि एको वनौकाः उपाविशत्। व्याघ्रः तमचीकथत्—रे वानर! वयं पशुजातेः

एक बहिन केकैयी ने मांगा, जिससे सारे परिवार में हाहाकार हो गया है। इसलिए अभी वरदान की बात उचित नहीं है। लक्ष्मण ने कहा—यदि वरदान में थोड़ा भी विलंब होगा तो हम जीवन भर अनुताप करेंगे। तब माँ ने कहा—पुत्र! ऐसा क्या वरदान है? तब लक्ष्मण ने कहा—मैं राम और सीता के साथ वनवास में जाना चाहता हूँ। यह सुनकर सुमित्रा हर्ष से प्रफुल्लित हुई। उसने कहा—पुत्र! जा-जा, तेरे विचार सुनकर मेरा मन हर्षित हो गया। तेरे जैसा पुत्र प्राप्त कर मैं धन्य हो गई हूँ।

१७. पिचाशिनी नारी

एक पुरुष अपनी पत्नी के क्रूर स्वभाव से दुःखी था। इसलिए वह घर पर देरी से आता था। पत्नी ने पति को जल्दी आने के लिए कई बार कहा, पर उसने उसके कहने पर ध्यान नहीं दिया। एक दिन पति को डराने के लिए पिचाशिनी का रूप बनाकर पत्नी श्मसान भूमि में जाकर बैठ गई। वह पति के घर जाने का रास्ता था। जब पति घर जाने के लिए श्मसान के निकट आया तो वह डरावनी ध्वनि में बोली—इधर आ, इधर आ। पति ने निर्भीक होकर मधुर भाषा में कहा—मैं प्रस्तुत हूँ, आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। उसने कहा—क्या मेरे से तुम्हें भय का अनुभव नहीं होता। पति ने कहा—अपना निकट का संबंध है। क्या संबंध है? मेरी पत्नी तेरी बड़ी बहिन है।

जिन महिलाओं का स्वभाव रौद्र और क्रूर होता है, वे पिचाशिनी समान हैं।

१८. स्वार्थी मनुष्य

एक मनुष्य जंगल में जा रहा था। उसे सामने आता हुआ एक चीता दिखाई दिया। वह अपनी रक्षा के लिए एक वृक्ष पर चढ़ गया। चीता आदमी को खाने के लिए दौड़ा। पर उसे वृक्ष पर आरूढ़ देखकर वह निराश हो गया। एक बन्दर भी वहाँ बैठा हुआ था। चीता ने बन्दर से

सदस्याः, अहं बुभुक्षितोऽस्मि। त्वमेतं जनं नीचैः प्रक्षिप। प्लवङ्गमेना-
वाचि—अयं मम शरणागतोऽस्ति। शरणागतेन साकं एतादृशो व्यवहारो
नौचिती मञ्चति। अनुस्वल्पसमयं कपिर्निद्रारतो बभूव। तदाकुटिलेन
व्याघ्रेण नोदितः एतं मृगशाखं नीचैः प्रक्षिप। अहं तं भुक्त्वाऽतः
ब्रजिष्यामि। तदा तं स्व-सद्यनि निश्चिन्तो भूत्वा यास्यसि। स्वार्थिना
मनुष्येण वनौका नीचैः प्रक्षिप्तः। परं सः नीचैः पतन् भूरुहस्य एकां शाखां
जग्राह। पुनश्च यथास्थानं उपाविष्ट। तदा द्वीपिना वानरः प्रोक्तः—अनेन
स्वार्थिना नरा त्वया सह निंदनीयं व्यवहृतं, एतं न विश्वसिहि, इदानीं एनं
झटिति नीचैः प्रक्षिप। कपिनोदितम् ईदृग् जुगुप्सनीयं मानव एव
व्यवहरति, अहमेतादृशं व्यवहर्तुं नार्हः।

स्वार्थवृत्त्या मानवसमाजे विविधा, समस्याः विलोक्यन्ते।

१९. मिष्टभोजनम्

एको जनयिता मरणासन्नः अन्तिमां शिक्षां ददानो जजल्प—सुत!
सदा त्वया मिष्टमशनं विधेयम्। तनयो विनीतोऽभूत्। तेन तातस्य भावना
नावसिता। पितु निधनात् पश्चात् सः प्रतिदिनम् मिष्टान्नानि अत्तुमारेभे।
तेन स रुग्णोऽजनि। यदा तस्य पितृव्यः सर्वा स्थितिमवजगाम, तदा तेन
नप्ता निर्दिष्टः, यावत् तव व्याधिरुपशान्तो न स्यात्, तावत् मम गृहे
निवस। भ्रातृव्यः पितृव्येन सार्धं समागतः। तत्र प्राकृतिक चिकित्साया-
प्रयोगो व्यजनि। साप्ताहावधिलङ्घनं कृतं। तदा भ्रातृपुत्रः बुभुक्षितोऽ-
जनिष्ट। पितृभ्रात्रा तस्मै एका नीरसा अपूपिका भोक्तुं प्रदत्ता। तेन सा
सहर्षं भुक्ता। भ्रातृव्येनाकथि—पितृव्य! इयं अपूपिका तु अतीव मिष्टा।
भ्रातृव्य! तव जनकस्य कथनस्य एतदेव रहस्यम्—यदा सघना क्षुधा स्यात्
तदैव अत्तव्यम्। त्वं पितुः निर्देशस्य मर्म सम्यक् नाज्ञासीः। त्वया प्रत्यहं
मिष्टाशनानि जग्धानि, तेन त्वमामयावी सञ्जातः। आयतौ त्वया
प्रखरबुभुक्षायामेव भोक्तव्यम्। भ्रातृव्यः निरामयीभूय स्वगेहमागतः।

कहा—हम दोनों पशु हैं। मैं भूखा हूँ। तू इसे नीचे फेंक दे। बन्दर ने कहा—यह मेरा शरणागत है। शरणागत के साथ ऐसा व्यवहार करना उचित नहीं है। थोड़ी देर बाद बन्दर को नींद की झपकी आ गई। तब मायावी चीता ने मनुष्य को कहा—बन्दर को नीचे धक्का दे दे। मैं इसे खाकर चला जाऊंगा। तब तू निश्चिन्त होकर घर चला जाएगा। स्वार्थी मनुष्य ने अवसर देखकर धक्का दे दिया। पर, बन्दर ने नीचे गिरते हुए वृक्ष की एक शाखा पकड़ ली। वह फिर अपने स्थान पर जाकर बैठ गया। चीता ने फिर बन्दर से कहा—इस स्वार्थी मनुष्य ने तेरे साथ घृणित व्यवहार किया है। अब तो इसे नीचे फेंक दे। इस पर विश्वास मत कर। कपि ने कहा—ऐसा निन्दनीय व्यवहार मनुष्य ही कर सकता है। मैं नहीं कर सकता।

स्वार्थ वृत्ति के कारण मानव-समाज में बहुत समस्याएं दृष्टिगोचर हो रही हैं।

१९. मिष्ट भोजन

पिता ने मरणासन्न अवस्था में अपने पुत्र को अंतिम शिक्षा दी—तुम सदा मीठा भोजन करना। पिता की मृत्यु के बाद वह प्रतिदिन मिष्ठान्न का भोजन करने लगा। इससे वह अस्वस्थ हो गया। जब उसके चाचा को सारी स्थिति की जानकारी हुई तो उसने भतीजे से कहा—जब तक तेरी बीमारी ठीक नहीं हो तू मेरे घर में रह। भतीजा चाचा के साथ आ गया। वहां प्राकृतिक चिकित्सा का प्रयोग हुआ। एक सप्ताह लंघन कराया। उसके बाद भतीजे को बहुत भूख लगी। चाचा ने उसे खाने को लूखी रोटी दी। उसने उसे सहर्ष खाया। उसने कहा—चाचा! यह तो बहुत मीठी है। तुम्हारे पिताजी के कथन का यही तात्पर्य था। गहरी भूख लगने के बाद ही खाना चाहिए। तू इसका मर्म नहीं समझा। तुमने प्रतिदिन मिष्ठान्न खाया इसलिए तू बीमार हो गया। भविष्य में तुझे गहरी भूख लगने के बाद ही खाना चाहिए। भतीजा वहां से स्वस्थ होकर अपने घर आ गया।

२०. तिलक-भेदः

श्रेष्ठिनः पार्श्वे एको नरः कर्मकरोऽभूत्। श्रेष्ठिनो ललाटेऽपि पुण्ड्रमभूत्, कर्मचारिणो ललाटेऽपि अभूत्। परं द्वयोःपुण्ड्रयोराकारे भिन्नताऽसीत्। श्रेष्ठी साम्प्रदायिकसंकीर्णताग्रस्तोऽभूत्। तेन विचारितम्—अयं मम भृत्यः, मत् पृथक्प्रकारेण विशेषकं विधत्ते, इदं तु मया अक्षम्यम्। तेन कोपाविष्टेन कर्मकरो निर्दिष्टः—यदि मम सविधे कार्यं चिकीर्षति, तदा माहंशं पुण्ड्रं विधातव्यम्। मम संप्रदायविरुद्धं कार्यं मया न सोढव्यम्।

श्वस्तने दिवसे कर्मकरः ललाटे सौवं तिलकं विहितवान्। तेन श्रेष्ठी कुपित्वा तम् उपालेभे। कर्मकरेण प्रोक्तं—श्रेष्ठिवर! मया भवता-मादेशोऽनुसृतः, इति कथयित्वा तेन उदरः दर्शितः। अहं उदरार्थं मेव भवतां भृत्यत्वं कुर्वे, अतः उदरे भवतामाम्नायमान्यं विशेषकं विहितवान्। ललाटे तु ममाम्नायसम्मतं विधास्ये। श्रेष्ठिना कथितम्—अहं मत् सेवातः त्वां मुक्तं करोमि। विश्वे संप्रदायान्धता मतान्धता च सर्वत्र प्रसृता। सा निन्दनीया एव।

२१. एकाक्षी माता

एका जननी एकाक्षी अभूत्। तस्याः तनयो वरिष्ठो राज्याधिकारी अचकासीत्, तदर्थं तस्य गृहे प्रतिदिनं नैके सम्मान्याः जना समागच्छन्। एकदा सूनूना सवित्री प्रोक्ता—तव निवासार्थं पार्श्ववर्तिनि सदाने व्यवस्था विहिता। तव एकाक्षित्वमालोक्य अतिथयः उपहसन्ति। माता शान्तस्वभावा, धर्मसाधनारता व्यलसत्। तयोदितम्—सूनो! तव संकेतानुसारेण अहं प्रसन्नोऽभूय विधास्यामि। श्वः सा अन्यस्मिन् सद्मनि व्रजितवती। सा वृद्धा रुग्णा चासीत्। अब्दद्वयं पश्चात् सा पञ्चत्वमाप्ता।

तदानीं सुतेन, मातुः सर्वाणि वस्तूनि प्रतिलेखितानि। तेषु वस्तुषु जनन्याः पाणिना लिखितमेकं पत्रमाप्तम्।

२०. तिलक-भेद

सेठ के पास एक कर्मचारी रहता था। सेठ के ललाट पर भी तिलक था और उसके ललाट पर भी तिलक था। पर दोनों के तिलक में अन्तर था। सेठ साम्प्रदायिक संकीर्णता से ग्रस्त था। उसने सोचा—यह नौकर मेरे पास नौकरी करता है, और मेरे से भिन्न प्रकार का तिलक लगाता है। यह मेरे लिए अक्षम्य है। उसने कर्मचारी से कहा—यदि मेरे यहां कार्य करना चाहता है तो मेरे जैसा तिलक लगा। मेरी संप्रदाय के विरुद्ध कार्य मैं सहन नहीं कर सकता।

दूसरे दिन कर्मचारी ने ललाट पर फिर अपनी परम्परा के अनुसार तिलक लगाया। यह देखकर सेठ क्रोध में अनर्गल शब्दों से उपालम्भ देने लगा। नौकर ने कहा—मैंने आपके आदेश का अनुसरण किया है, ऐसा कहकर अपना पेट दिखाया। मैं पेट के लिए आपकी नौकरी कर रहा हूँ। मैंने पेट पर आपकी परम्परा का तिलक लगाया है। ललाट पर तो मेरी परम्परा का तिलक करूंगा।

सेठ ने कहा—मैं तुझे अपनी सेवा से मुक्त करता हूँ। विश्व में जो साम्प्रदायिक संकीर्णता सर्वत्र व्याप्त है वह निन्दनीय है।

२१. एकाक्षी माता

माँ एकाक्षी—कानी थी। उसका लड़का वरिष्ठ राज्याधिकारी था। उससे मिलने के लिए अनेक सम्मानित लोग आते थे। एक दिन लड़के ने अपनी माँ से कहा—तुम्हारे रहने के लिए पड़ोस के भवन में व्यवस्था की है। तुम्हारा कानापन देखकर लोग उपहास करते हैं। माँ का स्वभाव बहुत शान्त था, वह धर्म साधना में लीन थी। उसने कहा—पुत्र! मैं तेरे संकेत के अनुसार खुश रहकर कार्य करूंगी। वह दूसरे दिन उस भवन में रहने चली गई। उसकी माँ वृद्ध भी थी, रुग्ण भी थी। लगभग दो वर्ष बाद उसका देहांत हो गया।

तब पुत्र ने माँ की सभी वस्तुओं को संभाला। उन वस्तुओं में माँ के

तस्मिन् पत्रे लिखितम्—प्रियाङ्गु! मम एकाक्षित्वेन त्वया त्रपाञ्चभावि। अहं त्वां ज्ञापयामि—तव जनुषो वर्षावधि पश्चात् तव एकस्मिन् नेत्रे दारुणा पीडा जाता। नेत्रचिकित्सकेन निर्णीतम्—अस्य चक्षुषो ज्योतिर्विनष्टम्। तदा मया कथितम्—अस्य इदं नयनं निष्कास्य मम नयनं प्रत्यारोपितव्यम्। अगदंकारेण तथैव व्यथायि। मया तदानीम् मातृधर्मः निरुद्धः, तेन मे मनसि संतुष्टिः जाता।

पत्रं पठित्वा पुत्रो घोरमन्वशयिष्ट।

२२. स्वभावपरिवर्तनम्

एकस्मिन् गृहे एका नवा पुत्र वधूः समागता। तां श्वश्रूः अवोचत्—स्नुषे! किञ्चित् पेषणार्थम् एकं लघु पाषाणखण्डमानय। श्वश्रूवरे! अहं श्रीमतः तनयास्मि। मया कदापि लोष्टखण्डो नोत्थापितः। इदं निशम्य श्वश्रूः विस्मिता जाता। सा धीमती आसीत्। तदानीं तया किमपि नोदितम्। सा स्वयं मुत्थाय पाषाणखण्डो गृहीतः।

जनन्याऽङ्गं स्नुषायाः घटना ज्ञापिता। सुतेन व्यचिन्ति—साम्प्रतं तु मे भार्या नव्याऽस्ति। अस्या आलस्यवृत्तेः परिवर्तनं, परिमार्जनं, साम्प्रतं तु सुकरम्, पश्चाद् दुष्करं भविष्यति। प्राचीनपद्धत्यनुसारम् एकं मनोहरमाभूषणं निर्मितम्। तस्मिन् भारो बहुरासीत्। तेन तदाभरणं स्व योषिते दर्शितम्। तद् विलोक्य सा सोत्कण्ठमवोचत्—पतिदेव! इदं तु मह्यं रोचते, एतदहं परिधास्यामि। धवोऽभणत्—अस्मिन् प्रभूतो भारः। त्वं कथं परिधत्से? अहं तु अस्माद् दशगुणितं भारं वोढुं शक्नोमि। भर्ता अवोचत्—यदा मम जननी लघीयः पाषाणखण्डमानेतुं निर्दिष्टवती तदा त्वयोक्तम्—अहं तु इयन्तं भारं वोढुं नार्हामि। इदं संश्रुत्य तस्य सहचरी अवजगाम—अस्याभूषणस्य निर्माणं मत्प्रकृतिपरिमार्जनाय एव व्यजनि। तेन भर्तुः समक्षे स्वत्रुटिः अभ्युपगता। तया प्रतिज्ञातम्—आयतौ पतिजनन्याः निर्देशमुत्साहेन पालयिष्यामि। धवः प्रसन्नीभूय तस्यै आभूषणमदयिष्ट।

हाथ का लिखा एक पत्र मिला। उस पत्र में लिखा था—प्रिय पुत्र! मेरे कानेपन के कारण तुझे लज्जा का अनुभव हुआ। मैं तुझे बताती हूँ—जन्म के एक वर्ष बाद तेरी आंख में भयानक वेदना हुई। आंखों के डॉक्टर ने यह निर्णय किया—इस आंख की ज्योति नष्ट हो गई है। तब मैंने चिकित्सक को निवेदन किया—इसकी आंख निकालकर मेरी लगा दो। डॉक्टर ने वैसा ही किया। मैंने मातृ धर्म निभाया, इससे मुझे अन्तस्तोष मिला। पत्र पढ़कर पुत्र ने घोर अनुताप किया।

२२. स्वभाव का बदलाव

एक घर में नई बहूरानी आई। उसकी सास ने कहा—एक छोटा पत्थर उठाकर ला, कुछ पीसना है। बहू ने कहा—मैं बड़े घर की बेटी हूँ, मैंने कभी पत्थर नहीं उठाया। यह सुनकर सास को विस्मय हुआ। पर वह बुद्धिमान थी। उसने उठकर स्वयं पत्थर ले लिया।

मां ने पुत्र को सारी घटना सुनाई। पुत्र ने सोचा—अभी तो मेरी पत्नी नई आई है। अभी तो इसकी प्रकृति में सुधार और बदलाव होना सरल है, बाद में कठिन हो जाएगा।

यह सोचकर पुरानी फैशन का भारी और सुन्दर आभूषण बनाया। उसने वह आभूषण पत्नी को दिखाया। उसे देखकर उत्कंठित होकर वह बोली—पतिदेव! यह गहना तो मुझे रुचिकर लगता है। इसे मैं पहनूंगी। पति ने कहा—यह भारी बहुत है, तुम कैसे पहनोगी। मैं तो इससे दसगुना भार उठा सकती हूँ। पति ने कहा—जब मेरी मां ने छोटा पत्थर लाने के लिए कहा था, तब तुमने कहा था मेरे से इतना भार नहीं उठता। यह सुनते ही पत्नी समझ गई, इस आभूषण का निर्माण मुझे समझाने के लिए हुआ है। उसने पति के समक्ष अपनी त्रुटि स्वीकार की और भविष्य में पति तथा माता के निर्देश का उत्साह से पालन करने का संकल्प लिया। पति ने प्रसन्न होकर वह आभूषण उसे दे दिया।

२३. दर्पणः

एकः संन्यासी दूरप्रदेशे जिगमिषुरासीत्। प्रस्थानात् पूर्वं सः तत्रत्येन महीभृता साकं मिलितः। क्षितीशेन संन्यासी अकथि—भवताऽवश्यं गन्तव्यम्, देशाटनं ज्ञानप्रवृद्धेः संसाधनम्। यदि कुत्रापि विशिष्टं संग्रहणीयं वस्तु स्यात् तदा मदर्थमानेतव्यम्।

संन्यासी अनेकेषु नगरेषु जग्मिवान्। किमपि नव्यं संग्रहणोचितं वस्तु न ददर्श। एकस्मिन्नापणे आत्मदर्शः विलोकितः। परदर्शनस्य साधनानि बहुलानि उपलभ्यन्ते, परं अनेन स्वदर्शनं भविष्यति, इति विचार्य स दर्पणः नृपतेरर्थं क्रीतः। यदा संन्यासी देशाटनं विधाय पुनः स्वनगरे समागतः तदा पार्थिवाय सः दर्पण उपहृतः। तेन कथितम्—अयं किमर्थमानीतः ?

संन्यासिनोदितं—भूमीभृत्। अनेन स्वदर्शनं कर्तुमीशाः। मम विचारेण स्वदर्शनम् जीवनस्य परमं लक्ष्यम्। नृपेण हर्षित्वा उपहारः स्वीकृतः। मुकुरेण स्वदर्शनस्य प्रेरणोपलभ्यते।

जनाः दर्पणेन गात्रदर्शनं विदधते, परम् आत्मदर्शनस्य प्रेरणाऽपि ग्रहणीया।

२४. कुतर्कस्य आलम्बनम्

एकः कर्मचारी कार्यालयसमये प्रतिदिनं बहिर्गतवान्। तदाऽधिकारिणाऽपृच्छि—बन्धो! कार्यालयसमये प्रत्यहं बहिः कथं यासि। तेनोदितम्—अहं क्षौरकर्मार्थं व्रजामि। अधिकारी प्रोवाच—क्षौरकर्म कार्यालयसमयादन्यत्र समये कर्तव्यम्। सः कुतर्कमालम्ब्य अवोचत्—यदा कुन्तलानि कार्यालयकाले प्रवर्धन्ते तदा क्षौरकर्म तस्मिन् काले कथं न। अधिकारिणा तस्य कुतर्को न स्वीकृतः। सः कार्यालयात् बहिष्कृतः। ये कुतर्कालम्बनेन स्वत्रुटिं पिधातुं प्रयतन्ते, ते न सफलीभवन्ति।

२३. दर्पण

एक संन्यासी दूर प्रदेश की यात्रा करना चाहता था। उसने जाने के पूर्व नगर के राजा से भेंट की। राजा ने संन्यासी से कहा—देशाटन जरूर करना चाहिए। इससे ज्ञान वृद्धि होती है। आप यात्रा में कोई संग्रहणीय वस्तु देखो तो मेरे लिए लाना। संन्यासी कई नगरों में गया, पर कोई संग्रहणीय वस्तु नहीं मिली। एक दुकान में उसने आकर्षक दर्पण देखा। संन्यासी को वह संग्रहणीय प्रतीत हुआ। उसने सोचा पर दर्शन के साधन बहुत है, पर यह स्वदर्शन का साधन है। उसने राजा के लिए वह खरीद लिया।

जब संन्यासी अपने नगर में पहुंचा तो उसने राजा को भेंट किया। राजा ने संन्यासी से कहा—महात्मन! यह दर्पण क्यों लाए? उसने कहा—राजन्! यह स्वदर्शन का साधन है, इसलिए इसका महत्त्व है। मेरे विचार से स्वदर्शन जीवन का परम लक्ष्य है। राजा ने प्रसन्न होकर उपहार स्वीकार किया। इससे दर्पण से आत्मदर्शन की प्रेरणा मिलती है।

लोग दर्पण से शरीर दर्शन करते हैं, पर इससे आत्मदर्शन की प्रेरणा भी लेनी चाहिए।

२४. कुतर्क का आलंबन

एक कर्मचारी प्रतिदिन कार्यालय के समय बाहर जाता था। उसके अधिकारी ने पूछा—बन्धु! कार्यालय के समय बाहर कहां जाते हो? मैं हजामत कराने जाता हूं। अधिकारी बोला—हजामत कार्यालय के समय से अलग समय में भी कराई जा सकती है। उस कर्मचारी ने कुतर्क का आलम्बन लेते हुए कहा—जब केश कार्यालय के समय बढ़ सकते हैं तो हजामत क्यों नहीं हो सकती, अधिकारी ने उसके कुतर्क को स्वीकार नहीं किया और उसे कार्यालय से मुक्त कर दिया।

जो कुतर्क का आलम्बन ले अपनी त्रुटि को ढकने का प्रयास करते हैं, वे सफल नहीं होते हैं।

२५. दुःखकारणम्

एको मनुष्यः प्रचुरसंपत्तिसंपन्नोऽभूत्। सः कार्यालये आसीन आसीत्। तदा सहसा संवादः प्राप्तः यत् त्वदीयं भवनं दग्धम्। इमं समाचारमाकर्ण्य सोऽतुलव्यथो व्याकुलश्च सज्जज्ञे। स्वल्पसमयात् पश्चात् तस्य प्रमुखकर्मचारिणा न्यवेदि—श्रेष्ठिवर! कापि चिन्ता न कर्तव्या, यद् भवनं दग्धं तद् द्वित्रिदिवसपूर्वं विक्रीतम्। इदं संश्रुत्य चिन्ता विलीना व्यजनि। अर्धघटिकायाः पश्चात् ज्येष्ठाङ्गजः समागच्छत्। तेन कथितम्—तात! अनल्पहानिरजनि। अस्माकं भवनं प्रज्वलितम्। तत्तु विक्रीतं मयेत्यश्रावि, तदा का व्यथा? तनयेन ज्ञापितम्—पितृवर! केवलं मौखिकी चर्चा सज्जाता, राजकीयपञ्जिका नाभूत्। अतोऽस्मदीया हानिरेव सज्जाता। एतन्निशम्य श्रेष्ठी बाढस्वरेण रुरोद।

यत्र ममत्त्वं, तत्रैव दुःखम्।

२६. विचित्रा प्रार्थना

एकेन छात्रेण देवालये प्रतिमायाः समक्षे बद्धाञ्जलीभूय उच्चस्वरेण प्रार्थितम्—भगवन्! अनुग्रहं कृत्वा भारतस्य राजधानीं मोहमयीं नगरीं कुर्वन्तु। सः आप्रेडितमेवं उच्चचार। एको मेधावी तत्र समागतः। तेन सः विद्यार्थी प्रोक्तः—राजधानी तु दिल्ली अस्ति, परं त्वं किमर्थं मोहमयीं वाञ्छसि, प्रार्थयसि। मम परीक्षायामेकः प्रश्नः पृष्ठः—भारतस्य राजधानी किन्नगरम्? मया मोहमय्या नाम लिखितम्। यदि मोहमयी भविष्यति, तदाऽहमधिकानङ्गानुपलप्स्ये।

तस्योत्तरं निशम्य स्मयमानः स ततो गतः? स्वार्थप्रेरिता विवेक-शून्येयं विचित्रा प्रार्थना।

२५. दुःख का कारण

एक मनुष्य बहुत संपन्न था। वह अपने कार्यालय में बैठा हुआ था। उसे अचानक सूचना मिली कि उसके भवन में आग लग गई है। यह समाचार सुनकर वह बहुत दुःखी हुआ। थोड़ी देर के बाद उसके प्रमुख कर्मचारी ने कहा—सेठ! कोई चिंता की बात नहीं है। जो जला हैं उसे दो दिन पूर्व बेच दिया है। यह सुनकर सेठ चिंतामुक्त हो गया। बाद में बड़ा लड़का आया। उसने कहा—बहुत नुकसान हो गया है। सेठ ने कहा—मैंने सुना है वह मकान तो बेच दिया है। लड़के ने कहा—मौखिक बात हुई थी। सरकारी पंजिका (रजिस्ट्री) नहीं हुई थी। इसलिए हमारी ही हानि हुई है। यह सुनकर सेठ जोर से रोने लगा।

जहां ममत्व है, वहां दुःख है।

२६. विचित्र प्रार्थना

एक छात्र ने देवालय में प्रतिमा के समक्ष हाथ जोड़कर ऊंचे स्वर से प्रार्थना की—अनुग्रह कर भारत की राजधानी मुंबई बना दो। उसने बार-बार बोलकर यह प्रार्थना की। वहां एक मेधावी छात्र आ गया। उसने पूछा—राजधानी तो दिल्ली है, तुम मुंबई क्यों चाहते हो?

मेरी परीक्षा में एक प्रश्न पूछा था—भारत की राजधानी कौन सा नगर है। मैंने मुंबई का नाम लिख दिया। यदि मुंबई हो जाए तो मुझे अधिक अंक मिलेंगे।

उसका उत्तर सुनकर वह हंसता हुआ वहां से चला गया। यह विवेक शून्य विचित्र प्रार्थना है।

२७. प्रलोभनम्

एको मूषको विवरादाजिगमिषुरासीत्। तेन प्राक् सर्वतोऽदर्शि। एकस्मिन् कोणे मार्जारी तिरोहिता उपासिष्ट। स पुनर्विवरे प्रविष्टः। स्वल्पसमयपश्चादाखुः पुनर्विलोकितवान् तदाऽपि आखुभुक् आसांचक्रे। द्विः त्रिवारं विलोक्य पुनर्विवरे गतः। मार्जारी बुभुक्षिताऽभूत्। तथा मूषकं वञ्चयितुं प्रोक्तम्—रे भागिनेय! यदि त्वं अस्मात् विवरात् अस्मिन् विवरे गच्छेः तदाहं तुभ्यं एकसहस्रस्वर्णमुद्रां दास्यामि। विलेशयः चतुरोऽभूत्। स प्रलोभनस्य आशयोऽवगतः। तेन कथितं मातृस्वसे! मया अवगम्यते—यदाहं तस्मिन् रन्ध्रे गमिष्यामि तदा त्वं मा मत्स्यसि। तदा मुद्रानां मत्कृते कः उपयोगः।

अर्थेन लुब्धा जना मृत्युमालिङ्गन्ति। तै र्मूषकात् शिक्षा ग्रहणीया।

२८. गुरुर्बुभूषु

एको बालकः क्रीडन् क्रीडन् महात्मनः आश्रमे आजगाम। महात्मा तस्य चतुरतां चपलतां वीक्ष्य प्रासादीत्। तेन बालोऽपृच्छि—किं त्वं मे शिष्यो बुभूषुः। बालेन कथितम्—शिष्यः को भवति? तदा महात्मनोदितम्—एकः गुरुर्भवति, एकः शिष्यो भवति। गुरुरादिशति, शिष्यस्तमादेशमनुसरति। किञ्चिद् विचार्य बालोऽब्रवीत्—अहं शिष्यस्तु नहि, भवतो गुरुर्बुभूषुरस्मि।

यः साधनातपस्यामृते गुरुत्वमलं चिकीर्षति सः समाजस्य कृते अनर्थकारी भवति।

२९. क्रोधोपशमनम्

एकाऽर्धाङ्गिनी उग्रस्वभावा, असहिष्णुश्चासीत्—तया स्वधवो निर्दिष्टः—निशायां गेहागमने न विलम्बितव्यम्। स प्रत्यहं यथासमयं समाजगाम। एकस्मिन् दिने तस्य विलम्बो व्यजनि। तेन सा

२७. प्रलोभन

एक चूहा बिल से बाहर आना चाहता था। उसने चारों ओर ध्यान से देखा। उसे एक कोने में बैठी हुई एक बिल्ली दिखाई दी। वह वापस बिल में चला गया। थोड़ी देर बाद चूहे ने फिर झांका, फिर भी बिल्ली बैठी हुई थी। दो तीन बार देखकर वह फिर बिल में चला गया। बिल्ली को भूख लगी हुई थी। उसने चूहे को ठगने के लिए कहा—अरे भाणेज! यदि तू इस बिल से उस बिल में आ जाए तो मैं तुझे एक हजार स्वर्णमुद्रा दूंगी। चूहा चतुर था। वह प्रलोभन का आशय समझ गया। उसने कहा—मौसी! मुझे मालूम है, यदि मैं इस बिल से उस बिल में जाऊंगा तो तू मुझे खा जाएगी। फिर स्वर्णमुद्रा का मेरे लिए क्या प्रयोग है?

अर्थ के प्रलोभन में फंसकर बहुत से लोग जीवन से हाथ धो बैठते हैं। उन्हें चूहे से शिक्षा लेनी चाहिए।

२८. गुरुत्व की इच्छा

एक बालक खेलते-खेलते महात्मा के आश्रम में गया। महात्मा उसकी चतुरता और चंचलता को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने बालक से पूछा—क्या मेरा शिष्य बनना चाहता है? बालक ने पूछा—शिष्य क्या होता है? महात्मा ने कहा—एक गुरु होता है, एक शिष्य होता है। गुरु आदेश देता है, शिष्य उसका पालन करता है। थोड़ा सोचकर उस चतुर बालक ने कहा—मैं शिष्य तो बनना नहीं चाहता, गुरु बनना चाहता हूँ।

जो साधना और तपस्या के बिना गुरु बनते हैं वे समाज के लिए समस्या उत्पन्न करते हैं।

२९. क्रोध का उपशमन

एक पत्नी का स्वभाव उग्र और असहिष्णु था। उसके निर्देश के अनुसार पति सायंकाल घर पर जल्दी आता था। एक दिन उसके आने में बिलंब हो गया। इससे वह क्रोधारुण हो गई। वह जोर से पति को उपालम्भ

कोपारुणाऽभूत्। सा उच्चस्वरैः भर्तारम् उपालम्भे। स तूष्णींभूय तस्याः कर्कशां गिरं समभावेन अश्रौषीत्। परं तथापि सा मौनं न देधे। तस्याः बाढस्वरेण उच्चारितानि परुषाणि वचांसि कर्णातिथीकृत्य प्रातिवेशिकाः एकत्र अभूवन्। तेन भर्ता त्रपामन्वभवत्। एकस्मिन् पात्रे यवागूं निर्मातुं सामग्री निहिताऽभूत्। गृहस्य अशान्तं वातावरणं परिवर्त्तयितुं तेन तद् यवागूप्रात्रं तच्छिरसि स्थापितम्। सा अचीकथत्—एवं किं कुरुते? तव मूर्ध्निर्नलः प्रज्वलति—यवागूः पक्वा भविष्यति, अग्नेः सदुपयोगो भविष्यति। अनेन सर्वं वातावरणं परिवर्त्तितम्, भार्यायाः क्रोधोऽपि शान्तः, तस्याः मनः सहजं जातम्।

३०. अस्थिरो ग्रामसेवकः

एको मानवः सेवाभावी अभूत्। परं तस्य स्वभावे अस्थिरता, चञ्चलता चासीत्। कोऽपि जनः कस्यापि कार्यार्थं सूचयति, सः झटिति तत् स्वीकरोति स्म। स्वल्पावधिपश्चात् कोऽपीतरो जनः इतरत् कार्यं निर्दिशति तदा प्राक्तनं कार्यं विहाय तदङ्गीकरोति। सोऽस्थिरः सेवाभावी प्रत्यहं अनेकानि कार्याणि प्रारभते स्म, परं तानि अपूर्णानि परित्यज्य अन्यानि कार्याणि उर्रीकरोति स्म।

शनैः शनैः तस्य प्रत्ययो विनष्टो व्यजनि। अस्थिरता असफलतायाः मूलम्।

३१. अहितकारिणी जननी

एको विद्यार्थी विद्यालयात् स्वसहपाठिनां किमपि पुस्तकं मस्तेनयत्। आलयमागत्य तेन जननी सूचिता। अद्य अहम् एकस्य छात्रस्य एकं पुस्तकमचूचुरम्। तेनाम्बा जहर्ष। द्वितीयस्मिन् दिने एकछात्रस्य लेखनीमचूचुरत्, तेन स चौर्यकर्मणि प्रोत्साहितोऽभूत्। शनैः-शनैः स स्तेय-कलायां कुशलोऽजनि। नगरे तस्कराणां समुदायोऽभूत्। स तेषां मण्डल्यां मिलितः। तैः साकं रजन्यां महार्घानि वस्तूनि चोरयितुं संलग्नः।

देने लगी। वह समभाव से सुनता रहा। तेज आवाज में बोले गए पत्नी के कठोर शब्दों को सुनकर पड़ौसी एकत्रित हो गए। फिर भी वह चुप नहीं हुई। तब पति को लज्जा का अनुभव हुआ।

एक हंडिया में खिचड़ी पकाने की सामग्री रखी हुई थी। घर के अशान्त वातावरण को बदलने के लिए पति ने उस हंडिया को पत्नी के सर पर रख दिया। पत्नी बोली—ऐसा क्या करते हो? पति ने कहा—तेरे सर में आग जल रही है, इससे खिचड़ी पक जाएगी। अग्नि का उपयोग हो जाएगा। इससे सारा वातावरण बदल गया, पत्नी का क्रोध उपशान्त हो गया। उसका मन सहज हो गया।

३०. अस्थिर ग्राम सेवक

एक मानव सेवाभावी था। पर उसके स्वभाव में अस्थिरता और चंचलता थी। जो कोई भी उसे किसी काम के लिए कहता वह उसे स्वीकार कर लेता था। थोड़ी देर बाद कोई दूसरा किसी काम के लिए कहता तो वह करने लग जाता। वह प्रतिदिन कई काम शुरू करता, पर उन्हें अधूरा छोड़कर दूसरा स्वीकार कर लेता।

धीरे-धीरे उसका विश्वास नष्ट हो गया। अस्थिरता असफलता का कारण है।

३१. अहितकारिणी जननी

एक विद्यार्थी ने विद्यालय से अपने सहपाठी की कोई पुस्तक चोरी की। घर पर उसने माँ को बताया—आज मैंने एक छात्र की पुस्तक चुराई। उससे माँ खुश हुई। दूसरे दिन एक छात्र की पेंसिल चुराई। उससे वह चोरी करने हेतु प्रोत्साहित हुआ। धीरे-धीरे वह चौर्य कला में निपुण हो गया। नगर में एक चौरों की मंडली थी। वह उसमें सम्मिलित हो गया। नगर में चौरों का समुदाय था। वह उस मण्डली में शामिल हो गया। उनके साथ

एकस्यां विभावर्था स्तेनमण्डल्या सह सोऽपि कोट्टपालेन निगृहीतः। द्वितीयस्मिन् दिवसे भूपस्य समक्षे सर्वे उपस्थिता जाताः। महीपेन तेभ्यः मृत्युदण्डो घोषितः। यदा तस्य मृत्योर्दण्डस्य क्रमः समागतः तदा सोऽवोचत्—अहं मृत्योः पूर्वं जनन्या सह वार्त्ता चिकीर्षुरस्मि। तदा सर्वकारस्याधिकारिभिरम्बा आहूता। यदा सा आसन्ने समागता तदा सुतेन तस्याः घ्राणं खादितम्। एतत् परिलोक्य सर्वे विस्मयमापन्नाः। यदा सोऽपृच्छि तदा तेन अश्रुपातं कुर्वाणेन अकथि—मया छात्रजीवने सहपाठिनां अनेकानि वस्तूनि चोरितानि, तदा अनयाहं प्रोत्साहितः, न तु प्रताडितः। तस्य प्रभावेण साम्प्रतमहं मृत्युमालिङ्गामि।

३२. अत्यन्ताभावः

एकदा तमसा भगवते विज्ञापितम्—अयं सहस्रांशुः मेऽस्तित्वं विनाशयति। यत्र कुत्राऽपि मम साम्राज्यं भवति तत्र मयूखान् प्रसार्य स्व-साम्राज्यं विस्तारयति। भवता मम सुरक्षा कर्तव्या। ध्वान्तस्य निवेदन-माकर्ण्य भगवान् दिवाकरमपृच्छत्—किं त्वं तिमिरं विनाशयसि? भानुनोक्तम्—अहं तु कमपि न विनाशयामि तथापि यस्य मनसि भ्रमोऽस्ति, तस्य मया सह मेलनं कारयितव्यम्। अहं तस्य शङ्कायाः निवारणं करिष्यामि। अद्यावधि मया तु कदाऽपि अन्धकारस्य अभिधाऽपि नाश्रावि।

भगवताऽपि अद्यावधि भास्करस्य तमसा साकं सम्मेलनं कारयितुं नाशाकि। यत्र रामः, तत्र न कामः। यत्र उपासना, तत्र न वासना। यत्र प्रभाकरः, तत्र न अन्धकारः। द्वयोर्मध्ये अत्यन्ताभावः।

वह रात्रि में मूल्यवान वस्तुओं की चोरी करने लगा। एक बार नगर रक्षक ने उन चोरों की मण्डली के साथ उसको भी पकड़ लिया। दूसरे दिन उन्हें राजा के समक्ष उपस्थित किया गया। राजा ने उन्हें मृत्युदंड की सजा घोषित कर दी। जब लड़के को मृत्यु दंड देने का क्रम आया तो उसने अपनी माँ से मिलने की इच्छा प्रकट की। सरकारी अधिकारियों ने उसकी माँ को बुलाया। जब मां निकट आई तो वह उसका नाक खा गया। यह देखकर सब आश्चर्यचकित हो गए। जब लोगों ने इसका कारण पूछा तो उसने रोते हुए कहा—मैंने छात्र-जीवन में सहपाठियों की वस्तुएं चुराई, तो इसने मुझे प्रोत्साहित किया, प्रताड़ित नहीं। इसके परिणामस्वरूप आज मैं मृत्यु का वरण कर रहा हूँ।

(जो अभिभावक बच्चों की त्रुटि का परिष्कार नहीं करते वे शत्रु के समान हैं।)

३२. अत्यन्ताभाव

एक बार अंधकार ने भगवान से निवेदन किया—यह सूरज मेरे अस्तित्व को मिटाता है। जहां भी मेरा साम्राज्य होता है वहां वह किरणें फैलाकर अपना साम्राज्य स्थापित करता है। आप मेरी सुरक्षा करें। अंधकार का निवेदन सुनकर भगवान ने सूरज से पूछा—क्या तुम अंधकार का अस्तित्व मिटाते हो। मैं तो किसी का अस्तित्व नहीं मिटाता, फिर भी किसी के मन में भ्रांति है तो उसके साथ मेरी भेंट करा दो। मैं उसकी शंका का निवारण कर दूंगा। मैंने तो उसका आज तक नाम भी नहीं सुना।

भगवान भी आज तक सूरज के साथ अंधकार की भेंट नहीं करा सके।

जहां राम है वहां काम नहीं है, जहां काम है, वहां राम नहीं है। जहां वासना है, वहां उपासना नहीं है, जहां उपासना है, वहां वासना नहीं है। जहां प्रभाकर है, वहां अंधकार नहीं है। जहां अंधकार है, वहां प्रभाकर नहीं है।

दोनों में अत्यन्ता भाव है।

३३. शब्दानामाग्रहः

जनन्या तनयः उपदिष्टः—यद् गृहीतं तत् न कदाऽपि परिहर्तव्यम्। पुत्रोऽल्पज्ञोऽभवत्। तेन मातुः शिक्षायाः मर्म नावबुद्धम्। एकदा विद्यालयादागतेन तेन एको रासभो वीक्षितः। बाल्यचापल्यात् तेन तस्य पुच्छो गृहीतः। तदा गर्दभेन तस्य पादप्रहारः कृतः। एतत् विलोक्य केनचिद् धीमता संकथितः—रे बाल! अस्य पुच्छं परिहर, अन्यथाऽयं पुनः पुनः पादप्रहारं करिष्यति। तेनाऽवाचि मम सवित्र्योपदिष्टम्—यद् गृहीतं तन्न कदापि परित्यक्तव्यम्।

धर्मशास्त्राणां भाषायाः विशदतया मर्म निर्णेतव्यम्। अन्यथा शब्दानामाग्रहेण जनाः परस्परं कलहायन्ते। तदा शास्त्राणि शस्त्राणि संज्जायन्ते।

३४. विधायक दृष्टिः

एको महात्मा सौवाश्रमे न्युवास। तस्य आश्रमे एकस्तुरङ्गमो व्यलसत्। स महात्मनोऽतीवप्रियोऽभूत्। महात्मा तमश्वमारुह्य प्रतिदिनं ग्रामे बभ्राम। स तुरगो लाक्षणिको रमणीयश्चासीत्। कतिपयैः तस्करैस्तं चोरयितुं मनसि निर्णीतम्। एकदा शर्वर्या स्तेनाः आश्रमे प्राविक्षन्। महात्मा गहननिद्रायामशयिष्ठ। स्तेना अवसरमालोक्य हयमस्तेनयन्। यदा महात्माऽजागरीत् तदाऽश्वो न मिलितः। पवनवेगेन सर्वत्र वाजिनः चौर्यस्य संवादः प्रसृतः। ग्रामस्य लोकाः सान्त्वनां प्रकटयितुम् आश्रमे समागच्छन्। परं महात्मानं प्रसन्नाननमालोक्य सर्वे विस्मयमापन्नाः। आश्रमे भक्तजनैरुपहृताः मोदकानां पेटिका अभूवन्। ये सान्त्वनां प्रकटयितुमायाताः, महात्मना तेभ्यः मोदकानि वितरितानि। लोकैः साश्चर्यमुदितम्—वयं तु हयस्य चौर्यसंवादं संश्रुत्य सान्त्वनां प्रकटयितुम् आयातामः, तदा मोदकानि कथं वितीर्यन्ते। महात्मना प्रोक्तम्—मम कृते हर्षोत्सवस्य दिवसोऽयम्।

ग्राम्यलोकाः प्रोदितवन्तः—भवता एवं कथं कथ्यते?

३३. शब्दों का आग्रह

माँ ने पुत्र से कहा—जिसे ग्रहण कर लिया उसे कभी छोड़ना नहीं चाहिए। पुत्र अल्पज्ञ था। वह माँ के कथन का मर्म नहीं समझ सका। एक बार विद्यालय से आते समय उसने एक गधा देखा। बाल्य-अवस्था की चपलता के कारण उसने उसकी पूंछ पकड़ ली। तब गधे ने उसके लाते मारी। किसी मतिमान मानव ने यह देखकर कहा—रे बालक! इसकी पूंछ छोड़ दे, नहीं तो यह और लात मारेगा। बालक ने कहा—मेरी मां ने कहा है—जिसे ग्रहण कर लिया उसे छोड़ना नहीं चाहिए।

धर्मशास्त्रों की भाषा का मर्म समझना चाहिए। जो सिर्फ शब्दों का आग्रह करते हैं वे उस बालक के समान हैं। उनके लिए शास्त्र भी शास्त्र के समान हिंसा के कारण बन जाते हैं।

३४. विधायक दृष्टि

एक महात्मा अपने आश्रम में रहता था। उसके आश्रम में एक घोड़ा था। वह महात्मा को बहुत प्रिय था। वह घोड़ा लाक्षणिक और आकर्षक था। कुछ चोरों ने उसे चुराने का विचार किया। एक बार चोरों ने रात्रि में आश्रम में प्रवेश किया। अवसर देखकर उन्होंने घोड़े को चुरा लिया। जब महात्मा जागा तो घोड़ा नहीं मिला। पवन वेग की तरह घोड़े के गुम होने के समाचार सारे गांव में फैल गए। वहां के लोग सान्त्वना प्रगट करने आश्रम में आए। पर महात्मा को प्रसन्न मन देखकर सभी विस्मित हो गए।

आश्रम में भक्तजनों द्वारा उपहृत लड्डूओं की पेटियां पड़ी थी। महात्मा ने सान्त्वना प्रगट करने आए लोगों को लड्डू वितरित किए। ग्राम्यजनों ने विस्मित होकर कहा—हम तो घोड़े के गुम होने के समाचार सुनकर सान्त्वना प्रगट करने आए हैं। फिर मोदक कैसे बांट रहे हो। महात्मा ने कहा—मेरे लिए यह हर्षोत्सव का दिवस है।

ग्राम्य लोकों ने कहा—आप यह कैसे कह रहे हो। चोरों ने घोड़े को चुराया पर मुझे नहीं चुराया। इसलिए मैं बहुत हर्षित हूं। महात्मा का

महात्मनाऽवाचि—स्तेनैरश्वः चोरितः, परं नाहं चोरितः। तुरगस्तु गतः, परमहं तु सुरक्षितोऽस्मि। एतदर्थमहं प्रहृष्टोऽस्मि। महात्मनां विधायक-चिन्तनमालोक्य सकला आगन्तुकाः जीवने एकं नवं प्रेरणाप्रदं पाठ-मपठिषुः।

विधायकदृष्टिसंपन्नाः जनाः अभावेऽपि भावमन्वेषयन्ति।

३५. आयतेः कल्पना

एका सहचरी स्वधवमवोचत्—मम स्वास्थ्यं सम्यक् नास्ति। मया चिकित्सायाः सततमावश्यकताऽनुभूयते। अहं तनयं चिकित्सकं निर्मास्यामि। तस्याः कथनं संश्रुत्य भर्ता जजल्प-साम्प्रतं सर्वकारेण नवीनाः नियमाः निर्मायन्ते, मम व्यापारो बहुविशालोऽस्ति अतोऽहमङ्गं वाक्कीलं निर्मास्यामि। ततो व्यापारे काठिन्यं न स्यात्। द्वावपि निजाग्रहे संलग्नौ आस्ताम्। एकदा बाढस्वरेण तौ अस्मिन् विषये विवादं चक्रतुः। तयोः विवादमाकर्ण्य प्रातिवेशिकाः लोकाः एकत्र जाताः। तेषु एकेन मतिमता मानवेन कथितम्—युवामपार्थ किं विवदेथे? अहं साम्प्रतमेव निर्णयामि। यदि सुतः चिकित्सको बुभूषुः तदा चिकित्सामहाविद्यालये तस्य प्रवेशः कारयितव्यः। यदि वाक्कीलो बूभूषति तदा विधिमहाविद्यालये प्रवेशः कारयितव्यः। तस्य कथनं पूर्णं न सञ्जातम्—दम्पती अजल्पताम्—मान्यवर! अद्यावधि तु तनयस्य जन्मापि न जातम्। इयं तु आयतेः कल्पना।

धार्मिकलोकाः अग्रिमजन्मनः संबंधे चिन्तयन्ति, परं वर्तमानजीवनं सुन्दरं शुभदं निर्मातुं न चिन्तयन्ति। एतन्नोचितम्।

३६. दुराग्रही स्नुषा

एका पुत्रवधूः अलसा, अज्ञाऽभूत्। सा किमपि गृहकार्यं न जानाति स्म। यदा श्वश्रूः बोधयितुं प्रायतिष्ठ तदा साऽजल्पत्—इदं कार्यं तु अवगच्छामि। पतिमाता अतीव सरला, सहिष्णुश्चाभूत्। सा वारं वारं

विधायक चिंतन देखकर ग्रामीणजनों को नई प्रेरणा मिली।

विधायक चिंतन वाले मनुष्य अभाव में भी भाव खोज लेते हैं।

३५. भविष्य की कल्पना

पत्नी ने पति से कहा—मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है, मुझे हर समय चिकित्सा की अपेक्षा रहती है। इसीलिए मैं पुत्र को डॉक्टर बनाऊंगी। उसकी बात सुनकर पति ने कहा—आजकल सरकार नए-नए कानून बना रही है, मेरा व्यापार बहुत बड़ा है इसलिए लड़के को वकील बनाऊंगा। दोनों के मानस में इस बात का आग्रह था। दोनों ही जोर-जोर से डॉक्टर और वकील बनाने का विवाद करने लगे। उनकी आवाज सुनकर पड़ोसी एकत्रित हो गए। उनमें से एक मतिमान मानव बोला—आप दोनों ही व्यर्थ क्यों विवाद करते हैं। मैं अभी निर्णय कर देता हूँ, यदि पुत्र डॉक्टर बनना चाहता है तो चिकित्सा महाविद्यालय में प्रवेश करा दें, यदि वकील बनना चाहता है तो विधि महाविद्यालय में प्रवेश दिला दें। उसका कहना पूरा ही नहीं हुआ कि माता-पिता दोनों हंसने लगे। उन्होंने कहा—मान्यवर! अभी बच्चे का जन्म ही कहां हुआ है, यह तो आगे की कल्पना है।

धार्मिक व्यक्ति आगे के जन्म का चिन्तन करते हैं, पर वर्तमान जीवन को सुन्दर और श्रेयस्कर बनाने का चिन्तन नहीं करते। यह उचित नहीं है।

३६. दुराग्रही पुत्रवधू

एक पुत्रवधू आलसी और मूर्ख थी। वह घर के कार्य से पूरी अनभिज्ञ थी। सास कोई भी कार्य बताने का प्रयास करती तो वह कहती यह तो मैं जानती हूँ। सास बहुत सरल और सहनशील थी। वह पुत्रवधू को घर का

कार्याणि शिक्षयितुं प्रयतितवती, परं तस्याः एकमेव प्रत्युत्तरमभूत्—अह-
मवबुध्ये ? तस्या दर्पाकुलेन व्यवहारेण श्वश्रूः खिन्ना, व्यथिताऽजनि।

एकदा प्रातिवेशिकस्य सदने पाणिग्रहणप्रसङ्गोऽभूत्।
श्वश्रूर्व्यचिन्तयत्—स्नुषायै बोधपाठं प्रदातुं तस्याः गर्वमपाकर्तु-
मुचितोऽवसरोऽस्ति। सायंकाले श्वश्रूः स्नुषामवदत्—अद्य अह-
मुद्वाहकार्यक्रमे गच्छामि। यावत् पर्यन्तमहं नागच्छेयम्, तावद् गृहे तमः-
प्रवेशो न स्यात्, इति त्वया जागरुकतया ध्यातव्यम्। सूर्यास्तवेलायां
श्वश्रूः पारिवेशिकसदने गतवती।

अज्ञा स्नुषा गृहद्वारे समागत्य वाढस्वरेण अभिहितवती—रे तिमिर!
अद्य ममालये त्वया न प्रवेष्टव्यम्। यदि त्वम् आगमिष्यसि तदाऽहं यष्ट्या
ताडयिष्यामि। तथा द्विः त्रिः एवं तारस्वरेण ऊचे। साऽचिन्तयत्, सांप्रतं
तमःगृहे न प्रवेक्ष्यति। सा निश्चिन्ता भूत्वा अशयिष्ट, गहननिद्रारता
व्यजनि। नववादनसमये तस्याः निद्राऽपगता। तथा व्यलोकि सर्वं गृहं
तमसाच्छादितम्। साऽचिन्तयत्—इदं ध्वान्तं तु धृष्टम्, निर्लज्जम्। तथा
यष्टिं गृहीत्वा सदनाग्निष्कासयितुं तमः भूरिभूरि ताडितम्। यष्टिप्रहारेण
अजिरं स्फुटितम्, भित्तिश्च स्फुटिता। तस्या हस्तो रक्तरज्जितो जातः।
घटिका पश्चात् श्वश्रूः समागता। तयोक्तम्—स्नुषे! तमः कथं समागतम्?
इदं प्रगल्भं विद्यते, मया प्रचुरं प्रताडितम्। श्वश्रूः अचीकथत्—ध्वान्तं
ताडनेन न पलायते, दीपप्रज्वलनेन पलायते। श्वश्रूः स्नेहप्रियं
प्रज्वलितवती तमो झटिति विलीनं च।

अद्य स्नुषा स्वाज्ञानमन्वभवत्। सा विनयेन गृहकार्याणि ज्ञातुं
संलग्ना।

बालानाम् अज्ञानान्धकारस्य निवारणं ताडनेन नहि स्यात्
ज्ञानगृहमणोः प्रज्वलनेन स्यात्।

३७. तनयस्यानुमानम्

तातः स्वतनयेन सह भवनस्य बहिरासीनोऽभूत्। अन्तर्गृहं एक-
पात्रस्य स्फोटनस्य घोषोऽजनि। तदा जनकेनादिष्टम्—पुत्र! अन्तर्गत्वा

कार्य बताने का प्रयास करती पर उसका रटा रटाया एक ही उत्तर था—यह तो मैं जानती हूँ। उसके गर्व पूरित उत्तर से सास खिन्न और व्यथित हो गई।

एक दिन पड़ोस में शादी का प्रसंग था। सास ने सोचा—बहूरानी को बोधपाठ देने तथा गर्व को विगलित करने यह उचित अवसर है। सायंकाल सास ने बहूरानी से कहा—आज पड़ोस में पाणिग्रहण है मैं वहां जाती हूँ। जब तक मैं नहीं आऊँ तब तक घर में अंधेरा नहीं आए। इसका जागरूकता से ध्यान रखना। सास सूर्यास्त के समय पड़ोस के घर चली गई।

मूर्ख बहूरानी ने सास के जाने के बाद जोर से आवाज दी—अंधकार! आज तू मेरे घर में मत आना। यदि तू आएगा तो मैं तुझे लाठी से पीटूंगी। उसने सोचा—अब अंधेरा मेरे घर में प्रवेश नहीं करेगा। वह निश्चिन्त होकर सो गई। उसे गहरी नींद आ गई। नौ बजे उसकी नींद उड़ी।

उसने देखा—सारा घर अंधेरे से भर गया है। उसने विचार किया—यह तिमिर बड़ा दुष्ट है, निर्लज्ज है। उसने हाथ में लाठी लेकर घर से बाहर निकालने के लिए अंधेरे को जोर-जोर से पीटा। लाठियों से पीटने से आंगन फूट गया, दीवार फूट गई। उसके हाथ भी लहलुहान हो गए। एक घण्टा बाद में उसकी सास आ गई। उसने कहा—बहूरानी! अंधेरा कैसे आ गया। बहू ने कहा—मैंने इसे बहुत पीटा, यह धृष्ट है। सास ने कहा—अंधेरा पीटने से नहीं जाता, दीपक जलाने से जाता है। सास ने दिया जलाया और अंधेरा भाग गया। बहू ने पहली बार अपने अज्ञान का अनुभव किया।

बच्चों के अज्ञान-अंधकार का सुधार पीटने से नहीं होता, ज्ञान का प्रकाश करने से जाता है।

३७. पुत्र का अनुमान

पिता पुत्र के साथ भवन के बाहर बैठा हुआ था। मकान के भीतर से एक बर्तन के फूटने की आवाज आई। पिता ने पुत्र से कहा—बर्तन किसके

वीक्षस्व—पात्रं केन स्फोटितम्? द्विः त्रिः कथितं तथापि सोऽन्तर्गृहं न जगाम। तदा जनकः साक्रोशमब्रवीत्, तथापि सः आलये न गतः। अङ्गजेन हसतावाचि—पितृवर! अन्तर्गमनस्य नावश्यकता। मयाऽत्र आसीनेनाभिज्ञातं पात्रं केन स्फोटितम्। मम जनन्या स्फोटितम्। वप्ता तत्कालं यात्वा व्यलोकयत्। बहिरागत्य तातेन वात्सल्यभावात् पुत्रोऽपृच्छि-सद्मनि अनेके सदस्याः विद्यन्ते, तदा त्वया कथमनुमितम्। तदाङ्गजेनोदितम्—अन्यः कोपि स्खलनं करोति तदा जननी तं बाढस्वरेण उपालभत एव। परम् अद्य पात्रस्य घोषो (झंकारः) जातः, परं मातुः प्रतिघोषः (टंकारः) न जातः। तेन मयाऽनुमितम्।

जनको व्यचिन्तयत्—अद्यतनाः बालका धीमन्तः, ते अभिभावकानां प्रत्येकं व्यवहारं जागरूकतया वीक्षन्ते।

३८. स्वार्थान्धाः सहोदराः

चतुर्णां सहोदराणामेकः परिवारोऽभूत्। सर्वेषां पाणिग्रहणमजनि। क्रमशः परिवारस्य विस्तारः सञ्जातः। तदा तैः संपत्त्या विभाजनं कृतम्। तेषां गृहे एका गौरासीत्। अन्येषां सर्वेषां वस्तूनां शान्त्या विभाजनं बभूव। परं गोः कृते चत्वारः कलहायन्ते स्म। तदा मध्यस्थेन निर्णीतम्—क्रमानुसारेण एकस्मिन् एकस्मिन् दिने चत्वारोऽपि गां रक्षन्तु। निर्णयानुसारेण प्रथमे दिने ज्येष्ठः सहोदरः सौरभेर्यां निजसदने आनयत्। तेन तस्याः दुग्धं गृहीतम्, परं किमपि तस्यै खादितुं न दत्तम्। तेन चिन्तितम्, कल्ये तु अहं गोरसं नाप्स्यामि। द्वितीयेन बन्धुनाऽपि एवमेव व्यवहृतम्। चत्वारोऽपि स्वार्थपरायणाः सहोदराः ऊधस्यमादातुं प्रयतितवन्तः, परं सौरभेर्या अशनार्थं न चिन्तितवन्तः। स्वल्पदिवसेषु गौः पञ्चत्वमाश्रयत्।

पश्चात् चत्वारोऽपि अन्वशयिषत। ये स्वार्थान्धा मनुजाः, ते अविवेकेन स्वाहितं विदधते।

हाथ से फूटा है, भीतर जाकर देखो दो-तीन बार कहने पर भी पुत्र नहीं उठा। तब पिता ने झिड़क कर कहा—भीतर नहीं जाता है। बालक ने कहा—पिताजी! मैंने भीतर बिना गए ही जान लिया है कि बर्तन किसके हाथ से फूटा है? मेरी माँ के हाथ से फूटा है। पिता ने भीतर जाकर देखा तो बच्चे का कहना सही निकला। पिता ने बाहर आकर वत्सलता से पूछा—बेटा! भीतर अनेक सदस्य हैं, तब तुमने कैसे अनुमान किया। घर में और कोई गलती करता है तो मेरी मां जोर से उलाहना देती है। आज वर्तन की झंकार तो हुई पर माँ की टंकार (प्रतिघोष) नहीं हुई। इससे मैंने अनुमान किया।

पिता ने सोचा—आज के बालक बुद्धिमान होते हैं, वे अभिभावकों के हर व्यवहार पर ध्यान देते हैं।

३८. स्वार्थाध सहोदर

चार भाइयों का एक परिवार था। सबका पाणिग्रहण हो गया। क्रमशः परिवार का विस्तार हुआ। उसके बाद उन्होंने संपत्ति का विभाजन किया। अन्य सारी संपत्ति का शांति से विभाजन हो गया। घर में एक गाय थी, उसके लिए चारों कलह करने लगे। तक निर्णायक ने यह निर्णय दिया—चारों भाई क्रमशः एक-एक दिन गाय को अपने घर में रखो। निर्णय के अनुसार पहले दिन बड़ा भाई गाय को अपने घर ले गया। उसने गाय का दूध ले लिया पर खाने को नहीं दिया। उसने सोचा कल दूध मुझे तो मिलेगा नहीं। दूसरे भाई ने भी पहले भाई जैसा व्यवहार किया। चारों स्वार्थी थे। उन्होंने दूध लेने का प्रयास किया, पर खाने को नहीं दिया।

थोड़े दिनों में गाय की मृत्यु हो गई। बाद में चारों ने पश्चात्ताप किया। जो स्वार्थान्ध मनुष्य होते हैं वे अविवेक मनुष्य होते हैं वे अविवेक से अपना अहित कर लेते हैं।

३९. पूर्वाग्रहः

द्वे पिपीलिके एकदा मिलिते। तयोः एका मिष्टान्नभण्डारे तथा एका लवणभण्डारे न्यवसत्। या लवणे निवसति स्म सा अवोचत्—भगिनि! मम मुखे तु सदा क्षारानुभवो जायते। तदेतराऽवाचि—त्वं मया साकम् आगच्छ, तवास्यं मधुरं भविष्यति। द्वे पिपीलिके मिष्टान्नभण्डारे आयातवत्यौ। सा लवणभण्डारस्य पिपीलिकाम् अवदत्—त्वम् इमं पदार्थम् आस्वादय। तथा अस्वादितम् परं तस्या मुखं मिष्टं न जातम्। तदा मिष्टान्ने निवासिनी पिपीलिका अब्रवीत्—अहं तव मुखं द्रक्ष्यामि। मुखं विलोक्य तथा कथितम्—तव रसनायां लवणस्य अंशोऽस्ति, तं बहिः क्षिप। तस्याः परामर्शं मनुसृत्य लवणांशं बहिरक्षिपत्। तत्पश्चात् तथा मिष्टान्न मास्वादितम्। तथा कथितम्—तवानुग्रहेण अद्य मया मिष्टान्नान्वभावि।

यावत् पर्यन्तं पूर्वाग्रहस्य लवणांशः विचारेषु स्यात् तावत् सत्यस्य मधुरता नोपलभ्यते।

४०. अपार्थो विवादः

कृषिकारेण निजा सहचरी कथिता—अहमेकां महिषीं क्रेतुमभिलषामि। पत्न्योदितम् क्रीणातु भवान्, परं तस्य नवनीतं मदीयाम्बा अत्स्यति। कृषकेणोदितम्—क्रीणामि अहम्, नवनीतं तव जननी खादेत्। एतन्न संभवम्। दधिसारमहमेव खादिष्यामि। द्वयोर्मध्ये तीव्रो विवादोऽजनि, द्वावपि बाढस्वरेण वक्तुं संलग्नौ। तदा प्रातिवेशिकाः एकत्र जाताः। तेषु एकोऽब्रवीत्—अद्यावधि महिषी न क्रीता। तदा नवनीतार्थं युवां किमपार्थं विवादं कुरुथः। प्राक् महिषी गृहे आनेतव्या, पश्चात् नवनीतस्य कृते चिन्तनीयम्।

केचिल्लोका निष्कारणं विवदन्ते। ते स्वशक्तेर्दुरुपयोगं विदधते।

३९. पूर्वाग्रह

दो चींटियां परस्पर मिली। उनमें एक मिष्टान्न-भण्डार में रहती थी, एक नमक के भण्डार में। जो नमक में रहती थी। उसने कहा—बहिन! मेरा मुंह हरदम खारा रहता है। मिष्टान्न वाली ने कहा—मेरे साथ चल। तेरा मुंह मीठा हो जाएगा। दोनों मिष्टान्न भंडार में आईं। मिष्टान्न वाली ने कहा—इसे चख, अभी तेरा मुंह मीठा हो जाएगा। उसने चखा, पर मुंह मीठा नहीं हुआ। तब मिष्टान्न वाली चींटी ने कहा—मैं तेरा मुंह देखूंगी। उसने देखकर कहा—तेरी जीभ पर नमक का अंश है, उसे बाहर थूक। उसने परामर्श मानकर नमक थूक दिया। उसके बाद मिष्टान्न का रसास्वादन किया। उसका मुंह मीठा हो गया।

जब तक पूर्वाग्रह का नमक विचारों में रहता है, तब तक सत्य का माधुर्य नहीं मिलता।

४०. व्यर्थ का विवाद

एक किसान ने अपनी पत्नी से कहा—मैं एक भैंस खरीदूंगा। पत्नी ने कहा—भले ही खरीदो, पर उसका मक्खन मेरी मां खाएगी। किसान ने कहा—भैंस मैं खरीदूँ और नवनीत तेरी मां खाए, यह नहीं हो सकता। मक्खन मैं ही खाऊंगा। इस बात को लेकर दोनों में तीव्र विवाद हो गया, दोनों जोर-जोर से बोलने लगे। उनकी आवाज सुनकर पड़ोसी एकत्रित हो गए। एक विवेकशील भाई ने कहा—अभी भैंस खरीदी नहीं है, मक्खन के लिए क्यों झगड़ा करते हो। पहले भैंस ले आओ फिर मक्खन के लिए विचार करना। कतिपय लोग व्यर्थ का विवाद कर अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं।

४१. परीक्षायामनुत्तीर्णः

चत्वारो युवानो महात्मनामाश्रमे साधनायाः मार्गदर्शनमाप्तु-
मागतवन्तः। महात्मना कथितम्—युष्माभिः अद्य निशायामाश्रमे
स्थातव्यम्। अहं युष्मान् परीक्षिष्ये। चत्वारो युवानः आश्रमस्य सभागारे
रजन्त्यां विश्रामार्थं स्थितवन्तः। महात्मना निर्दिष्टम्—निशायां युष्माभिरद्य
मौनं स्वीकर्तव्यम्, एकोऽपि शब्दो न वाच्यः।

यदा सघनं ध्वान्तमभूत्, तदा एकेन तरुणेनावचि—गहनमन्धतमसं
प्रसृतम्, केनापि स्नेहप्रियो न प्रज्वलितः, द्वितीयेन कथितम्—मा ब्रूहि,
तृतीयेन कथितम्—त्वयापि प्रोक्तम्। चतुर्थेनोदितम्—अहमेव न
जल्पितवान्।

महात्मा गुप्तचरमाध्यमेन सर्वां स्थितिं ज्ञातवान्। तेन सर्वे
निर्दिष्टाः—यूयं मम परीक्षायां अनुत्तीर्णाः, साधनायाः कृते अयोग्याः।

साधनायाः कृते भावसंयमः आवश्यकः।

४२. क्रियाशून्यं ज्ञानम्

एकस्य नरस्य पाकशालायां मूषकाः अभूवन्। सः तेन सव्यथः
परितप्तश्च सञ्जातः। एकस्मिन्नापणे तेन एका पुस्तिका व्यलोकि। तस्य
शीर्षकमभूत्—वज्रदन्तान् धावयितुमुपायशतकम्। तेन तत् पुस्तकम् सहर्षं
क्रीतम्। गृहे समागत्य पाकशालायां मूषकान् दर्शयित्वाऽजल्पत्—अस्मिन्
पुस्तके युष्मान् निष्कासयितुं उपायशतकं वेविद्यते। इदमहमत्र स्थापयामि।
इदं कथयित्वा स निश्चिन्तो जातः। तेन विमर्शितम्—साम्प्रतं मम समस्या
समाहिता। पुस्तिकायाः भीत्वा सर्वे बिलेशयाः पलायिष्यन्ते। परं
परिणामो विपरितोऽज्जनि। मूषकाः निर्भीकाः भूत्वा पुस्तिकाम् अकृन्तन्।
क्रियाशून्यं ज्ञानं निरर्थकं भवति।

४१. परीक्षा में अनुत्तीर्ण

चार युवक महात्मा के पास साधना का मार्गदर्शन लेने के लिए आए। महात्मा ने कहा—तुम सब आज रात्रि में मेरे आश्रम में रहो। मैं परीक्षा लूंगा। यदि परीक्षा में उत्तीर्ण हुए तो मैं साधना का पथ दिखाऊंगा। चारों युवक रात में आश्रम के सभागार में रहे। महात्मा ने चारों से कहा—आज रात्रि में बिल्कुल मौन रखना। यह तुम्हारी परीक्षा है। अंधेरा होने के बाद एक युवक ने भावना के प्रवाह में बहकर कहा—अंधेरा हो गया, किसी ने दीपक भी नहीं जलाया। दूसरे ने कहा—बोल मत। तीसरे ने कहा—तू भी बोल गया। चौथे ने कहा—एक मैं ही बिना बोले रहा हूँ।

महात्मा को गुप्तचर द्वारा जानकारी मिल गई। प्रातःकाल उन्हें कहा—तुम परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो। इसलिए यहां से अब जा सकते हो। साधना में सफल होने के लिए भावना का संयम आवश्यक है।

४२. क्रिया शून्य ज्ञान

एक आदमी की पाकशाला में चूहे बहुत थे। इससे वह परेशान हो गया। उसने दुकान में एक पुस्तक देखी—उसका शीर्षक था—चूहे भगाने के सौ उपाय। उसने वह पुस्तक हर्षित होकर खरीद ली। घर में पाकशाला में ले जाकर चूहों को दिखते हुए कहा—इसमें तुम्हें भगाने के सौ उपाय हैं, मैं यह पुस्तक यहां रखता हूँ। वह भाई वहां पुस्तक रखकर निश्चिन्त हो गया। उसने सोचा—अब मेरी समस्या हल हो गई। इस पुस्तक को देखकर चूहे भाग जाएंगे। पर इसका परिणाम बिल्कुल उल्टा हुआ। चूहों ने निर्भीक होकर पुस्तक को कुतर दिया। क्रिया शून्य ज्ञान का कोई उपयोग नहीं है।

४३. स्वागतम्

एको मेधावी पण्डितः राज्यसभायां समागतः। तस्य वासांसि जीर्णानि मलिनानि अभूवन्। भूपेन सः उदासीनभावेन व्यलोकि। सोऽन्यधीमतां पृष्ठे मौनमालम्ब्य उपाविशत्। तस्मिन् समये सभायां काऽपि गहनदार्शनिकचर्चा अभवत्। सः प्राज्ञः अवसरं वीक्ष्य सुरभारत्यां प्रस्तुतविषयस्य अतीव मार्मिकं हृदयस्पर्शिं विवेचनं चक्रे। तद् विवेचनं कर्णातिथीकृत्य धरणीशः श्रद्धानतः सज्जातः। यदा सः प्रत्यवलत् तदा महीक्षित् तं सम्मानयितुं बहिः साकं जगाम।

एकेन सभ्येन पार्थिवोऽपृच्छि—यदाऽयं मनीषी समागतः तदा तु भवता न सम्मानितः, परमस्य प्रस्थानसमये बहु सच्चक्रे। तदा नृपेणोत्तरितम्—आगमनसमये नृणां स्वागतं वस्त्रैर्जायते, गमनवेलायां गुणैः जाजायते।

गुणानां सत्कारो यथार्थः सत्कारः।

४४. दण्डस्य त्रिरूपाणि

त्रयो मनुष्याः सदृशं पापकर्म अकार्षुः। धरेशस्य पाश्वे कोट्टपालेन दण्डप्रदानार्थं त्रयोऽपि प्रस्तुताः कृताः। प्रथमपुरुषस्य नेत्रयोः व्रीडाऽनुभूतिरभूत्, स नीचैः पश्यन् अश्रुपातं कुर्वन् भूपस्य सम्मुखे समुपस्थितः। नरपतिनोक्तम्—त्वम् एतादृशं निम्नकर्म करोसि। तस्यानने गहना त्रपाभूत्। त्वं गच्छ, नरेशेनादिष्टः। द्वितीयपुरुषेण स्वल्पा लज्जाऽनुभूता। पृथ्वीपेन उच्चस्वरेण कठोरशब्दैरवाचि—अहं तुभ्यं सूचयामि, आयतौ ईदृशीं त्रुटिं करिष्यसि तर्हि कठोरदण्डं प्रदास्यामि। तृतीयपुरुषः निर्लज्जोऽभूत्। तस्य मानसे अपराधस्य कृते ग्लानिर्नाभूत्।

यदा स राज्यसभायां उपस्थितः तदा राज्ञा कोट्टपालः आदिष्टः—अस्य मुखं कृष्णं कृत्वा गर्दभम् आरोहयित्वा सर्वस्मिन् नगरे एतं भ्रामयतु। एकेन जिज्ञासितम्—समानपापकर्मणां दण्डभेदः कथम्? तदा नरेशेनोदितम्—योऽपराधं विधाय ग्लानिमनुभवति सः स्वयं पश्चात्तापं विधत्ते। यो ग्लानिं नानुभवति तस्य कृते दण्डोऽधिको भवति।

४३. स्वागत

एक विद्वान राजसभा में आया। उसके कपड़े मैले और फटे हुए थे। राजा ने उसे उदासीन भाव से देखा। वह विद्वानों के पीछे मौन भाव से बैठ गया। उस समय सभा में कोई दार्शनिक चर्चा हो रही थी। उस विद्वान ने अवसर देखकर प्रस्तुत विषय के संबंध में मर्मस्पर्शी विवेचन किया। वह विवेचन सुनकर राजा प्रभावित और श्रद्धानत हो गया। जब वह जाने लगा तो राजा उसे छोड़ने के लिए बाहर आया।

एक सदस्य ने प्रश्न किया—जब यह विद्वान आया तब तो राजन्! आपने ध्यान ही नहीं दिया, जब गया तब छोड़ने के लिए बाहर गए। राजा ने कहा—आने के समय मनुष्यों का स्वागत वस्त्रों से होता है, जाने के समय सम्मान वैदुष्य से होता है। गुणों का सम्मान ही सच्चा सम्मान है।

४४. सजा के तीन रूप

तीन मनुष्यों ने एक समान पाप कर्म किया। कोतवाल ने उन्हें सजा देने के लिए राजा के समक्ष प्रस्तुत किया। पहले पुरुष की आंखों में लज्जा का अनुभव था। वह अश्रुपात करता हुआ राजा के समक्ष उपस्थित हुआ। राजा ने कहा—तू ऐसा निम्न कार्य करता है? उसने गहरी ग्लानि का अनुभव किया। तुम जाओ, राजा ने इतना कहकर विदाकर दिया। दूसरे पुरुष के चेहरे पर थोड़ी लज्जा थी। राजा ने उसे कड़े शब्दों में डांटते हुए कहा—भविष्य में ऐसी गलती करेगा तो तुझे कड़ी सजा मिलेगी। तीसरा पुरुष निर्लज्ज था। उसके मानस में अपराध के प्रति ग्लानि का अनुभव नहीं था। राजा ने सजा सुनाते हुए कोतवाल से कहा—इसका मुंह काला कर गधे पर चढ़ा सारे नगर में घुमाओ।

किसी ने जिज्ञासा की—समान अपराध करने वालों के लिए सजा का विधान भिन्न-भिन्न कैसे? राजा ने कहा—अपराध कर जो मन में ग्लानि अनुभव करता है, वह स्वयं पश्चात्ताप करता है। उसे कम सजा दी गई, जिसे ग्लानि का अनुभव नहीं होता, उसका दण्ड अधिक होता है।

४५. कृष्णवाससां रहस्यम्

एकः संन्यासी कृष्णवासांसि परिधाय श्रेष्ठिनः सद्मनि भिक्षार्थं समागतः। श्रेष्ठी तं पप्रच्छ-असितानि वसनानि कथं परिहितानि। तेन अभाणि-मम स्वजनाः पञ्चत्वमाप्ताः, तेषां वियोगे एतादृशानि वस्त्राणि परिहितानि। के ते स्वजनाः? श्रेष्ठिना जिज्ञासितम्। संन्यासी अवोचत्-कामः क्रोधः मदो मोहः जन्म-जन्मतः मे स्वजनाः, ते साम्प्रतं मृताः। श्रेष्ठिना परीक्षितुमुदितम्-त्वाद्दृशाः अनेके प्रवञ्चकाः, मायाविनो वेषं परिवर्त्य भ्रमन्ति, गच्छ, गच्छ-अहं तुभ्यं किमपि न दास्यामि। संन्यासी शान्तभावेन ततः प्रत्यवलत्। यदा बहिर्गतः तदा एकं कर्मकरं पुनरानेतुं प्रेषितवान्। संन्यासी पुनरागतः। तदा तं दृष्ट्वा श्रेष्ठी जजल्प-रे निर्लज्ज! धूर्त्त! पुनरागतः। संन्यासी शान्तभावेन बहिरागतः। तदा श्रेष्ठी पुनः निज कर्मचारिणं प्रेष्य आमन्त्रितवान्।

क्षमाधारी महात्मा साम्यसुधामास्वादयन् पुनः श्रेष्ठिसदने समायतवान्।

तदानीं श्रेष्ठी महात्मानं सादरं प्रणम्य उवाच-मया भवन्तः परीक्षिताः, वस्तुतः भवदीयाः रोषरागाहंकाराः स्वजना निधनमापन्। सांप्रतं ममगृहात् यथेष्टं भवान् भिक्षामादत्ताम्। अहं कृतार्थो भविष्यामि।

४६. परेषां समीक्षा

द्वयोर्वयस्ययोः पाणिग्रहणं संजातम्, एकदा द्वौ परस्परं मिलितौ। द्वावपि निजार्थाङ्गिन्याः व्यवहारेण संतुष्टौ नास्ताम्। एकेनोदितम्-मम भार्या एकेन कर्णेन शृणोति, द्वितीयेन निष्कासयति। द्वितीयेन कथितम्-मम सहचरी श्रोत्राभ्यामाकर्णयति, मुखेन तत्कालमेव निष्कासयति। द्वाभ्यां निजभार्यायाः समीक्षा कृता। सर्वेऽपि परान् समीक्षन्ते, परं आत्मशोधनार्थं स्वसमीक्षणं श्रेयस्करम्।

४५. काले कपड़ों का रहस्य

एक संन्यासी काले कपड़े धारण कर एक सेठ के घर भिक्षा के लिए आया। सेठ ने उससे पूछा—काले कपड़े क्यों धारण किए हैं? उसने कहा—मेरे स्वजनों का देहांत हो गया है, इसलिए काले वस्त्र धारण किए हैं। सेठ ने पूछा—कौन से स्वजन। संन्यासी ने कहा—काम, क्रोध, मद, मोह—ये मेरे जन्म-जन्म के साथी थे। सेठ ने परीक्षा लेने के लिए कहा—तैरे जैसे अनेक प्रवंचक मायावी वेष बदलकर घूमते हैं। जा, यहां से चला जा। मैं तुझे कुछ भी नहीं दूंगा। संन्यासी शान्त भाव से वहां से मुड़ गया। जब बाहर गया तो सेठ ने कर्मचारी को फिर लाने के लिए भेजा। संन्यासी फिर आ गया। सेठ ने देखते ही कहा—रे निर्लज्ज फिर आ गया, चला जा यहां से। संन्यासी शान्त भाव से बाहर आ गया। सेठ ने फिर बुलाने कर्मचारी को भेजा। तीसरी बार संन्यासी फिर शांत भाव से आ गया। इस बार सेठ ने कहा—मैंने आपकी परीक्षा कर देख लिया—आपके काम, क्रोध मर गए हैं। अब मेरे घर से भिक्षा लें, मैं कृतार्थ हो जाऊंगा।

४६. दूसरों की समीक्षा

दो मित्रों की शादी हो गई। एक बार दोनों का परस्पर मिलना हो गया। दोनों अपनी पत्नी से संतुष्ट नहीं थे। एक बोला—मेरी पत्नी इस कान से सुनती है दूसरे कान से निकाल देती है। दूसरे ने कहा—मेरी श्रीमती कान से सुनती है, मुंह से निकालती है। दोनों ने अपनी सहचरी की समीक्षा की। सभी दूसरों की समीक्षा करते हैं, पर आत्मशोधन के लिए अपनी समीक्षा श्रेयस्कर है।

४७. वशीकरणमन्त्रः

एकेन भक्तेन विश्वं वशीकर्तुं देवी आराधिता। तस्याः आराधनया प्रसन्नीभूय देवी प्रकटीभूता। तयाऽपृच्छि—त्वयाहं किमर्थं आराधिता। भक्तेनावाचि—अहं विश्वं वशीचिकीर्षुरस्मि, अहमेतद् वरदानमभिलषामि। देव्योक्तम्—वरदानस्य पूर्वं मम प्रश्नानामुत्तराणि दातव्यानि। प्रतिवेशिनस्तव वशे सन्ति न वा? ते तु मया साकं सततं कलहायन्ते। तव पारिवारिकजनाः? तेपि ममाधीना नहि। तव सहचरी? सा तु मामनुशास्ति। तव तनयः—सोऽनुशासनहीनः, तव मनः—तत्तु वल्गाविरहित-तुर्ग इव धावति।

देवी जजल्प—यदि परिवारो तव वशे न, तव मनोपि नो तवाधीनम्, तदा विश्वस्य वशीकरणस्य कल्पना गगनप्रसूनायते। इत्युक्त्वा देवी अन्तर्हिताऽभूत्।

यः स्वं वशीकरोति—अनुशास्ति, स एव विश्वं वशीकर्तुमीशः। अयं वशीकरणमन्त्रः।

४८. शयनम् जागरणम्

एको बालो जनकेन सह तीर्थस्थले गतवान्। एकस्मिन् विशाले सभागारे सोऽशयिष्ट। तत्र परःशताः अन्येऽपि तीर्थयात्रिणोऽस्वाप्सुः। सः बालः शीघ्रं जजागर। तेन पितोदितः—अस्मिन् तीर्थस्थानेऽपि एते वृद्धाः अधुनावध्यपि शेरते, एतत्तु त्रपास्पदम्, अहं लघीयान् भूत्वाऽपि ब्रह्म वेलायां अजागरिषम्।

जनकेनावाचि—तव जागरणाऽपेक्षया एषां शयनं वरम्। इदं निशम्य तनयो विस्मितिमाश्रयत्। सोऽपृच्छत्—भवतः कथनस्य रहस्यम् अहं नाज्ञासिषम्। तदा जनयिताऽवदत्—यो जागरित्वा परान् निंदति, जुगुप्सते वा तस्यापेक्षया शयानो मनुष्यो श्रेयस्करः।

यो जागरित्वा सत्कार्यं करोति, अध्यात्मचिन्तनं विधत्ते तस्यैव जागरणं श्रेयस्करम्। योऽन्येषां दोषानवलोकते तस्य स्वपनमेव शुभंकरम्।

४७. वशीकरण मंत्र

एक भक्त ने विश्व को वश करने के लिए देवी की आराधना की। देवी प्रसन्न होकर प्रगट हुई। उसने पूछा—मेरी आराधना क्यों की? उसने कहा—मैं विश्व को वश में करना चाहता हूँ। मैं वरदान देने से पूर्व तेरे से कुछ प्रश्न पूछना चाहती हूँ। पड़ोसी तेरे वश में हैं या नहीं। वे तो मेरे साथ कलह करते हैं। तेरे पारिवारिक जन वश में हैं या नहीं, नहीं हैं। तेरी पत्नी! वह तो मेरे पर अनुशासन करती है। तेरा पुत्र! वह तो अनुशासन-हीन है। तेरा मन! वह तो चंचल घोड़े की तरह दौड़ता है।

देवी ने कहा—जब तेरे पड़ोसी, पारिवारिक जन, तेरा मन तेरे वश में नहीं है, तब विश्व को वश करने की कल्पना आकाश कुसुम के समान है।

जो अपने को वश करता है, वह विश्व को वश में करने में समर्थ होता है। यह वशीकरण मंत्र है।

४८. शयन और जागरण

एक बालक पिता के साथ तीर्थ स्थल पर गया। वहाँ वह एक विशाल सभागार में सोया। उसमें दूसरे भी सैकड़ों तीर्थयात्री सो रहे थे। वह बालक शीघ्र जाग गया। उसने अपने पिता से कहा—ये वृद्ध लोग तीर्थ स्थान में भी अभी तक सो रहे हैं। यह तो लज्जास्पद है। मैं बालक होकर जाग गया। पिता ने कहा—तेरे जागने से उनका सोना अच्छा है। यह सुनकर बेटा विस्मयमग्न हो गया। उसने कहा—मैं आपके कथन का अर्थ नहीं समझ सका। जो जागकर दूसरों की निंदा करता है, उसकी अपेक्षा सोने वाला मनुष्य श्रेयस्कर है। पिता के समझाने से पुत्र को नया प्रकाश मिला।

जो जागकर सत्कार्य करता है, अध्यात्म चिंतन करता है, उसका जागना श्रेष्ठ है, जो दूसरों का दोष दर्शन करता है, उसका सोना उचित है।

४९. निःस्वार्थवृत्तिः

एकोऽशीतिवर्षीयो वृद्धः सहकारपादपानवाप्सीत्। केचित् युवान-स्तत्र समागताः। तैः स्थविरः पृष्टः—भवान् किं करोति। अहमाप्रद्रुमान् वपामि। तैरुपहसद्भिः प्रोक्तम्—त्वं ज्यायान् संजातः, एषां क्षितिरुहानां सहकारान् कोऽत्स्यति? तदा स्थविरेण मतिमता मार्मिकमुत्तरं प्रादायि। मम पूर्वजैः ये विटपिनः उप्ताः तेषामाग्नान् वयम् अभ्यवहरामः। वयं यानगान् वपामः तेषां सहकारान् अस्माकमुत्तरवर्त्तिनो भक्षिष्यन्ते। सृष्टेरयं सनातनो नियमः। मनुष्यैः कदापि स्वार्थवृत्त्या न विचारणीयम्।

वृद्धस्योद्गारानाकर्ण्य वयस्कैरकथि—अद्य अस्माभिः जीवने नव्या दृष्टिः, प्रेरणा चालम्भि। यो निःस्वार्थं कर्त्तव्यं निर्वहति, तस्य जीवनं सार्थकम्।

५०. विचार-संक्रमणम्

भूपालेन नगरे नवः तटाको निर्मितः। तेन नगरे एका उद्घोषणा विहिता। समस्तैर्नागरिकैः कल्पे एकपात्रोपेतं दुग्धं तटाके निक्षेप्तव्यम्।

एकेन विचारितम्—सकलाः क्षीरं क्षेप्स्यन्ति, अहमेको यदि नीरं निक्षिपामि तत् कोऽपि न ज्ञास्यति। अस्य विचारस्य व्यापकं संक्रमणं जातम्। भूधनो यदा द्रष्टुं गतः तदा कासारोऽम्बुना भृतमासीत्।

४९. निःस्वार्थ वृत्ति

एक अस्सी वर्ष का वृद्ध आम के वृक्ष बो रहा था। कुछ युवक वहां आए। उन्होंने वृद्ध से पूछा—आप क्या करते हो? मैं आम के वृक्ष बो रहा हूँ। उन युवकों ने हंसते हुए कहा—इन वृक्षों के आम कौन खाएगा। उस मतिमान वृद्ध ने मार्मिक उत्तर दिया—पूर्वजों ने जो पेड़ लगाए थे उनके आम हम खा रहे हैं, हम जो वृक्ष लगा रहे हैं, उनके फल आगे की सन्तानें खाएगी। सृष्टि का यह सनातन नियम है। मनुष्य को कभी स्वार्थवृत्ति से नहीं सोचना चाहिए।

वृद्ध के उद्गार सुनकर युवकों ने कहा—आज हमें जीवन में, नई दृष्टि नई प्रेरणा प्राप्त हुई है। जो निःस्वार्थ वृत्ति से कर्तव्य का पालन करते हैं। उनका जीवन सार्थक है।

५०. विचारों का संक्रमण

राजा ने नगर में एक नया तालाब बनाया। राजा ने घोषणा की कल प्रातःकाल एक-एक पात्र दूध सभी नए सरोवर में डाले। एक मनुष्य ने सोचा—सभी एक-एक पात्र दूध डालेंगे, यदि मैं पानी डालूँ तो कोई नहीं जानेगा इस विचार का व्यापक संक्रमण हो गया। जब राजा देखने गया तो सारा तालाब पानी से भरा था।

५१. प्राकृतिकाः गुरवः

शिक्षकः विद्यार्थिनः उपादिक्षत्—प्रकृतिः विश्वस्य सर्वश्रेष्ठा शिक्षिका विद्यते। पृथ्वी, पानीयानिलानलादयः प्रकृतेः प्रमुखाङ्गानि सन्ति। शिक्षकेन विस्तरेण व्याख्यातम्—पृथिव्या सहनशीलतायाः प्रेरणा ग्रहीतव्या। अनया सह मानवो विचित्रं व्यवहरति, एतां खनति, अस्यां अशुचि पदार्थान् निक्षिपति। परं तथापि एषा न कुप्यति।

पानीयमपलासिकां शाम्यति, सहजां शीतलतां प्रददाति, समलमपि अमलं विधत्ते। अग्निः ज्योतिर्मयजीवनस्य प्रेरणां ददाति, तमसि आलोकं विदधाति। पवनोऽप्रतिबद्धतां गतिशीलतां प्रेरयति।

५२. विद्या ददाति विनयम्

यूनानराज्यस्य उल्फादेवीमन्दिरे भक्तजनाः एकत्रिताः। तैः श्रद्धाभावेन देव्याः आराधना कृता। आराधनया प्रसन्नीभूय देवी प्रकटीभूता। सकलैर्भक्तैरपृच्छि-देवि! यूनानराज्ये सर्वतोऽधिको ज्ञानी कोस्ति? देव्योदितम्—यूनाने सुकरातो महत्तमो लब्धवर्णः। सर्वेऽपि हर्षित मनसो भक्ताः सुकरातस्य सद्गानि आजग्मुः। ते सुकरातमवदन्—भवान् यूनानराज्यस्य श्रेष्ठतमो मनीषिवर्यः—देव्योदितमिदम्। सुकरातेनोचे—अहं तु अज्ञजनानां शिरोमणिरस्मि, अहं मेधावी नास्मि। भक्तैः मन्दिरे पुनः समागत्य देवी आराधिता। यदा देव्या दर्शनं दत्तं तदा भक्तैः कथितम्—सुकरातस्तु स्वमज्ञमवबुध्यते। देवी अचीकथत्—यो निजस्य अज्ञानमवगच्छति, स एव यथार्थतः मनीषिमूर्धन्यः। यः स्वं प्राज्ञ-मवस्यति सोऽज्ञशिरोमणिः।

५१. प्राकृतिक गुरु

शिक्षक ने विद्यार्थियों को उपदेश दिया—प्रकृति विश्व की सर्वश्रेष्ठ शिक्षिका है। पृथ्वी, अग्नि और हवा प्रकृति के प्रमुख अंग हैं। शिक्षक ने इसकी व्याख्या करते हुए विस्तार से बताया—पृथ्वी से सहनशीलता की प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए, इसके साथ मनुष्य विचित्र व्यवहार करता है, इसे खोदता है, इसमें अशुचि पदार्थ डालता है फिर भी यह क्रोधित नहीं होती।

पानी प्यास का शमन करता है, सहज शीतलता प्रदान करता है। अग्नि समल को निर्मल बनाती है। ज्योतिमय जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

हवा अप्रतिबद्धता का पाठ पढ़ाती है तथा सतत गतिमान रहने की शिक्षा देती है।

५२. विद्या से विनय

यूनान राज्य के प्रसिद्ध अल्फा देवी के मंदिर में भक्त जन एकत्रित हुए। उन्होंने श्रद्धा भाव से देवी की आराधना की। आराधना से प्रसन्न होकर देवी प्रगट हुई। सभी भक्तों ने पूछा—देवी! यूनान राज्य में सबसे अधिक विद्वान कौन है? देवी ने कहा—यूनान राज्य में सुकरात सबसे अधिक विद्वान है। सभी हर्षित मन से सुकरात के घर आए। उन्होंने सुकरात से कहा—आप यूनान के सबसे बड़े ज्ञानी हैं यह देवी ने कहा है। सुकरात ने कहा—मैं अज्ञानी जनों का शिरोमणि है, मैं विद्वान नहीं हूँ। भक्तों ने मंदिर जाकर फिर देवी की आराधना की। देवी ने दर्शन दिए, तब भक्तों ने कहा—सुकरात तो स्वयं को अज्ञानी समझता है। देवी बोली—जो अपने को अज्ञानी समझता है, वही मनीषि-मूर्धन्य है। जो अपने को प्राज्ञ समझता है वह अज्ञशिरोमणि है।

५३. क्षमाशस्त्रम्

अमेरिकायाः पूर्वराष्ट्रपत्युरब्राह्मलिकनस्य सर्वत्र ख्यातिर्जाता। स स्वभावतः उदारः सहिष्णुरासीत्। केचिदीर्ष्यावशात् तेषां विरोधिनोऽजनिषत्। केचित् सुहृज्जनाः राष्ट्राध्यक्षाय निवेदितवन्तः—केचिज्जनाः भवन्तं निन्दन्ति, विरुन्धन्ति, अतस्ते नाशयितव्याः। अब्राहमलिकेनोदितम्—अहं तान् नाशयिष्यामि, परम् आयसैः शस्त्रैर्न, क्षमायाः शस्त्रेण तान् नाशयिष्यामि—परिवर्त्तयिष्यामि।

राष्ट्रनायकस्य क्षमाशीलव्यवहारेण शनैः शनैः विरोधिनां निन्दकानां हृदयपरिवर्त्तनमजनि। तेऽपि राष्ट्राध्यक्षस्य प्रशंसकाः सेवकाः अभूवन्। क्षमायाः शस्त्रं सर्वश्रेष्ठमस्ति।

५४. महाभिक्षुः

कस्मिन् नगरे एको योगी आसीत्। केनचिद् भक्तेन तस्मै एका स्वर्ण-मुद्रा प्रदत्ता। योगिना स्वशिष्याय स्वर्णमुद्रा प्रदत्ता तथा सोऽसूचयत्—एषा मुद्रा महाभिक्षुकाय दातव्या। एकदा अन्यराज्यस्य महीपतिस्तां नगरीं विजेतुं अकस्मादचक्राम। तदानीं सः शिष्यः तां स्वर्णमुद्रां आक्रामकाय भूपाय उपजहार। सोऽब्रवीत्—मह्यम् किं दीयते, कथं दीयते? तदा शिष्योऽवोचत्—मम गुरुणादिष्टम् यो महाभिक्षुको मिलेत् तस्मै एषा मुद्रा प्रदातव्या। कोपारुणेन पार्थिवेनोदितम्—अहं भूपतिरस्मि, अहं भिक्षुः कथं कथितस्त्वया? यः परेषां सम्पत्तिं कामयते, ताम् प्राप्तुं प्रयतते स एव भिक्षुर्भवति। भवानन्यस्य राज्यमधिकर्तुं समागतः। इयं भिक्षावृत्तिरेव। अतुलसंपदायाः सत्तायाः स्वामी भवन्नपि न संतुष्टः। एतदर्थं मम दृशा महाभिक्षुर्भवान्।

शिष्यस्य उद्गारान् निशम्य धरेशस्य विचाराणां परिवर्त्तनमजनि। सः पुनः स्वराज्यं जगाम।

५३. क्षमा का शस्त्र

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहमलिनकन की सर्वत्र प्रसिद्धि हो गई। वे उदार और सहनशील थे। कुछ लोग ईर्ष्यावश उनके विरोधी हो गए थे। मित्रजनों ने लिनकन से अनुरोध किया—कुछ मनुष्य आपकी निंदा करते हैं, विरोध करते हैं, आपको उनका विनाश करना चाहिए। राष्ट्रपति ने कहा—मैं उनका नाश करूंगा, पर लोहे के शस्त्रों से नहीं, क्षमा के शस्त्र से करूंगा, उनका हृदय परिवर्तन करूंगा। क्षमाशील व्यवहार से निंदक और विरोधी लोगों का दिल बदल गया, वे लिनकन के प्रशंसक हो गए।

क्षमा का शस्त्र सबसे बड़ा शस्त्र है।

५४. बड़ा भिक्षु

किसी नगर में एक योगी रहता था। किसी भक्त ने उसे एक स्वर्ण मुद्रा भेंट की। योगी ने वह स्वर्ण मुद्रा अपने शिष्य को दी और कहा—किसी बड़े भिक्षु को दे देना। एक बार अन्य नगरी के राजा ने उस नगरी पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया। तब शिष्य ने आक्रामक राजा को वह स्वर्ण मुद्रा भेंट की। आक्रांता भूपति ने कहा—मुझे क्या देते हो, क्यों देते हो? तब शिष्य ने कहा—मेरे गुरु ने कहा है—किसी बड़े भिक्षु को यह मुद्रा देना। तब उसने कहा—मैं भिखारी नहीं, राजा हूँ। शिष्य ने कहा—आपके पास विशाल सत्ता और समृद्धि है, फिर भी संतुष्ट नहीं हो, यहां और लेने के लिए आए हो, यह भिक्षुक की वृत्ति ही तो है।

शिष्य के विचार सुनकर राजा का मन बदल गया। वह पुनः अपने राज्य में चला गया।

५५. पिपीलिकाभ्यः प्रेरणा

एको भूपालः आजौ पराजितो बभूव। सः तदा नैराश्य तमिस्रायां निमग्नः गहने गहने कस्यांश्चिद् गुहायां तिरोहितवान्। तस्यां गुहायां परः शताः पिपीलिकाः भित्तेरुपरिष्ठात् भागम् आरोढुं प्रयतितवत्यः। तासु अनेकाः पुनः पुनः नीचैः पतित्वाऽपि ऊर्ध्वारोहणार्थं पुरुषार्थरताः अभूवन्। ताः पतनेन निराशा न बभूवुः। पुनः पुनः प्रयासेन ता लक्ष्यमाप्तुं सफलीभूताः।

पिपीलिकानाम् अविश्रान्तमायासमालोक्य वसुधेशस्य नैराश्य-मपगतम्। तस्य मानसे नवीनोर्जायाः संचारो जातः। स पुनः सन्नद्धो भूत्वा रणभूम्यां गतः, विजयेन्द्रिरां वव्रे। यो नैराश्यमपहाय सततं प्रयतते तदर्थम् असफलताऽपि सफलतायाः हेतुभूता सञ्जायते।

५६. परम्परा

एको मूढः तटाकस्य मृत्तिकामिश्रितं मलिनमम्भोऽपिबत्। तस्मिन् सरोवरे सलिलम् अतीव स्वल्पमभूत्। तत्र एकः पथिकः आजग्मिवान्। तेन कथितम्—बन्धो! अस्य कासारस्याविलं नीरं कथं पिबसि? सन्निकटे अच्छाम्बुसरोवरो वरिवर्त्ति। मया अमाऽऽगच्छ, अहं ज्ञापयामि। तेन प्रत्युक्तम्—अयं तटाको मम परिवारस्य विद्यते। अहं तु अस्यैवोदकं पास्यामि। मम कृते एतस्यामृतं तु अमृतोपमम्।

पूर्वाग्रहप्रसिताः सत्यस्य सुधाम् आस्वादयितुं न प्रभवन्ति।

५५. चींटियों से प्रेरणा

एक राजा युद्ध में पराजित हो गया। वह निराशा की अंधेरी में डूबा हुआ गहरे जंगल की गुफा में जाकर छुप गया। वहां सैकड़ों चींटियां दीवार के ऊपर चढ़ने का प्रयत्न कर रही थी। उनमें बहुत सी चींटियां नीचे गिर-गिर कर पुनः ऊपर चढ़ने का पुरुषार्थ कर रही थी। राजा ने ध्यान से देखा—वे गिरने से निराश नहीं हो रही थी। सतत प्रयत्न कर वे चींटियां सफल हो गईं।

चींटियों का अविरल आयास देखकर राजा के मन से निराशा दूर हो गई। उसके मन में नई ऊर्जा का संचार हुआ। वह पुनः सन्नद्ध होकर युद्धभूमि में गया और विजय लक्ष्मी का वरण कर आया।

जो निराश नहीं होकर सतत प्रयत्नशील रहता है, उसके लिए असफलता भी सफलता का द्वार बन जाती है।

५६. परम्परा

मूढ़ व्यक्ति एक तालाब का मिट्टी मिला हुआ मैला पानी पी रहा था। उस तालाब में पानी भी थोड़ा था। वहां अचानक एक राहगीर आ गया। उसने कहा—भाई! इस तालाब का गन्दा पानी क्यों पी रहा है? पास में ही एक अच्छे पानी का तालाब है। मेरे साथ चल मैं तुझे बताता हूँ। उस मूढ़ मानव ने कहा—तालाब मेरे परिवार का हैं, मैं तो इसके ही पानी का पान करूंगा। इसका पानी तो मेरे लिए अमृत के समान है।

पूर्वाग्रह से ग्रसित लोग सत्य के मधुर और निर्मल रस का आस्वादन नहीं कर सकते।

५७. ईर्ष्या

द्वौ मानवौ सार्धमेव देव्या उपासनां कृतवन्तौ, एको लोभी, एकश्चेर्ष्यालुरासीत्। तयोरुपासनया प्रसन्नीभूय देव्या दर्शनमदायि। देव्योक्तम्—युवाभ्यां यत् याचितव्यम्, तत् त्वरा याच्यम्। लोभी अवोचत्—प्रागहं याचिष्यामि। ईर्ष्यालुरुवाच—अहं प्राक् याचिष्यामि। परस्परं विवादे संलग्नौ जातौ। देव्याऽभाणि—यः पश्चात् याचिष्यते, तस्मै द्विगुणितं प्रदास्यामि। तदानीम् आग्रहस्य भाषा परिवर्तिता। द्वावपि पश्चात् याचितुमुत्सुकौ अभूताम्। देवी स्वल्पं प्रतीक्ष्य गन्तुकामा जाता। तदा सहसा ईर्ष्यालुर्जल्प-मातः! अहं वरं याचे—मम एकं नयनं स्फोटय। अनेन वरदानेन साकं तस्य एकं नेत्रं स्फुटितम्, लोभिनः द्वे नेत्रे स्फुटिते।

जीवने अनेके अवसराः वरदानरूपेण सर्वैरुपलभ्यन्ते, परं येषां मनः शान्तम्, शुद्धं भवति, त एव तेषां लाभमाप्नुवन्ति।

५८. पुरुषार्थहीनः

एकं तस्करं निग्रहीतुं नगरवासिनस्तस्य पृष्ठे अधावन्। यदा जनसमूहः तस्य निकटे समायात्, तदा स्व-सुरक्षार्थं सः पार्श्ववर्तिनि देवीमन्दिरे प्राविशत्। तेन दैन्यस्वरेण देवी प्रार्थिता—त्राहि मां त्राहि माम्। तदा देवी अवोचत्—मा बिभीहि, मन्दिरस्य द्वारं पिधेहि। तेन कथितम्—अहं भयाक्रान्तः पाषाण इव संजातः, एकं चरणमपि चलितुं नार्हामि। देवी पुनरब्रवीत्—मम प्रतिमायाः पृष्ठे आगच्छ। त्वां कोऽपि न स्पर्शयति। अहं तु किञ्चिदपि चलितुं नेशः। करुणार्द्रभूता देवी पुनरपि उवाच—यदा नागरास्त्वां निगृह्णीयुः तदा त्वया बाढस्वरेण 'हुं' वक्तव्यम्। अहं तु एतदपि वक्तुं न शक्नोमि। तदा देवी अचीकथत्—त्वाद्दृशं दुर्बलम्, पुरुषार्थहीनं पातुम् अहमपि न प्रभवामि।

५७. ईर्ष्या

दो मनुष्यों ने एक साथ देवी की आराधना की। दोनों में एक लोभी था, एक ईर्ष्यालु था। उनकी उपासना से प्रसन्न होकर देवी ने दर्शन दिए। देवी ने कहा—मांगना हो तो जल्दी मांग लो, लोभी बोला—पहले मैं मांगूंगा, ईर्ष्यालु बोला—मैं मांगूंगा। जब पहले मांगने के लिए आग्रह करने लगे तब देवी ने कहा—जो बाद में मांगेगा, उसे दुगुना मिलेगा। यह सुनते ही आग्रह की भाषा बदल गई। दोनों बाद में मांगने का आग्रह करने लगे। कुछ देर प्रतीक्षा कर जब देवी जाने लगी तब ईर्ष्यालु ने कहा—मैं पहले मांगता हूँ—मेरी एक आंख फोड़ दो। इस वरदान से ईर्ष्यालु की एक आंख फूट गई, लोभी की दो आंखें फूट गईं।

जीवन में सभी विविध अवसर वरदान रूप से प्राप्त करते हैं। जिनका मन शान्त और शुद्ध होता है वे ही उनका लाभ प्राप्त करते हैं।

५८. पुरुषार्थ हीन

एक चोर को पकड़ने के लिए नगरवासी उसके पीछे दौड़ रहे थे। वह अपनी सुरक्षा के लिए एक देवी के मंदिर में चला गया उसने दीनता के स्वयं में देवी से प्रार्थना की—मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। तब देवी ने कहा—घबरा मत, मेरे मंदिर का दरवाजा बन्द कर दे। उसने कहा—मैं तो भय के कारण पत्थर के समान हो गया हूँ, इसलिए एक कदम भी चल नहीं सकता। देवी फिर बोली—मेरी प्रतिमा के पीछे आकर खड़ा हो जा तुझे कोई नहीं पकड़ेगा। उसने कहा—मैं तो एक कदम भी नहीं चल सकता। फिर भी देवी करुणार्द्र होकर बोली—जब नगरवासी तुझे पकड़े तो 'हुंकार' की आवाज कर देना। मैं तो यह भी नहीं कर सकता। तब देवी बोली—तेरे जैसे सत्त्वहीन और पुरुषार्थहीन मनुष्य की मैं भी रक्षा नहीं कर सकती।

५९. धर्मस्य परिभाषा

एकेन विवेकहीनेन अन्धभक्तेन विशाले जनसमुदाये बाढ स्वरेणोचे—मया कदापि धर्मस्य परित्यागो न विहितः। यद्यपि कदाचित् सुरापानमकार्षम्, स्तेयकर्मापि आचरितम्, व्यापारे खाद्यपदार्थेषु अपमिश्रणमपि विहितवान्, भावावेशे एकं जनं जघान। परं धर्मभ्रष्टो न जातः। तदा एकेन मतिमता मानवेन अपृच्छि—तव धर्मस्य का परिभाषा। तेन कथितम्—मया कदापि अस्पृश्यानां स्पर्शो न व्यधायि, तेषां पाणिभ्यां पानीयं न पीतम्, मया एष धर्मो जागरूकतया अनुसृतः। धर्मस्य नाम्ना कियन्ति पापानि फलन्ति। कियन्तोऽन्धविश्वासाः विश्वे प्रचलन्ति।

६०. लेखनी-क्षुरी

एको ग्रामीणः कस्यचिच्छ्रेष्ठिनः आपणे समागतः। स तत्र आसीन आसीत्। श्रेष्ठिनः कर्णे रक्षिता लेखनी सहसा नीचैः पतिता। तदा ग्राम्योऽवोचत्—श्रीमन्! भवदीयाऽसिपुत्री नीचैः पतिता। श्रेष्ठिना रोषारुणेनऽवाचि—मूढ! इयं लेखनी विद्यते। त्वयाऽसिपुत्री-क्षुरी कथम् अकथि। ग्रामीणेनोदितम्—भवतां कृते लेखनी अस्ति, परम् अस्माकं गलोच्छेदनाय असिपुत्री एव।

ये धीमन्तो वणिजः निःश्रीकान् निरक्षरान् ग्राम्यजनान् विप्रतारयन्ति तेषां लेखनी क्षुरी एव।

५९. धर्म की परिभाषा

एक विवेकहीन अंधभक्त ने विशाल जन-समूह में कहा—मैंने धर्म का कभी त्याग नहीं किया। यद्यपि कभी-कभी सुरापन भी किया, कभी चोरी भी की। कभी व्यापार करते हुए खाद्य पदार्थों में मिलावट भी की, भावावेश में एक आदमी की हत्या भी की। पर धर्म भ्रष्ट नहीं किया। एक बुद्धिमान आदमी ने पूछा—तुम धर्म किसे समझते हो? उसने कहा—मैंने अछूत लोगों का स्पर्श नहीं किया, उनके हाथ का पानी नहीं पिया। मैंने इस धर्म का जागरूकता से अनुसरण किया है।

धर्म के नाम से कितने पाप पल रहे हैं। विश्व में कितने अन्धविश्वास प्रचलित हैं।

६०. लेखनी छुरी

एक ग्रामीण किसी सेठ की दुकान पर बैठा हुआ था। सेठ के कान में टंगी हुई लेखनी नीचे गिर गई। तब ग्रामीण ने कहा—आपकी छुरी नीचे गिर गई। सेठ ने क्रोधित होकर कहा—मूर्ख! यह कलम है। तुमने छुरी कैसे कहा? उस ग्राम्यजन ने कहा—श्रीमन्! आपके लिए कलम है, हमारा गला काटने के लिए तो यह छुरी है।

जो बुद्धिमान व्यापारी निर्धन, निरक्षर ग्रामीण लोगों को ठगते हैं उनकी लेखनी छुरी के समान होती है।

६१. कोऽस्ति चण्डालः

एको महात्मा पावनापगायां स्नात्वा समागतः। अध्वनि एका चाण्डालिनी मिलिता। महात्मनः तस्याः स्पर्शोऽजनि। तेन रोषारुणेन महात्मना चाण्डालिन्यै गालयः प्रदत्ताः। तदानीं चाण्डालिनी तस्य हस्तं गृहीत्वा उच्चस्वरेण जजल्प—अयं मे धवोऽस्ति। इदं श्रुत्वा जन-समूहः एकत्रितोऽजनि। इदं विचित्रं दृश्यमालोक्य सर्वे विस्मितम्। महात्मा पुनः पुनः उद्घोषयति—इयं मृषा भाषते। अहं महात्माऽस्मि। चाण्डालिनी कथयति—अयं संन्यासी वितथभाषी। तदा चाण्डालिनीं महात्मानं च केचिल्लोकाः न्यायालये आनयन्। महात्मा ज्ञानी अभूत्, मार्गं तेन चिन्तितम्—चाण्डालिन्याः स्वल्पस्पर्शेन मम मानसे क्रोधचण्डालस्य प्रवेशो जातः। तेन स्वस्य स्खलनाऽन्वभावि। तस्याकृतिः पुनः सहजाऽजनि। यदा न्यायाधीशेन चाण्डालिनी पृष्टा—किम् अयं तव धवः? चाण्डालिनी प्रोदितवती—प्राक् अभूत्, साम्प्रतम् नास्ति। प्राक् अस्य मानसे रोषचाण्डालः प्रविवेश। अतः मम पतिरभूत्।

सर्वा घटनां संश्रुत्य न्यायाधीशो जहास। मनुष्यो जात्या नहि, आचारेण व्यवहारेण चाण्डालो भवति।

६२. ममत्वम्

एकस्मिन् परिवारे कश्चित् पञ्चत्वमापत्। पारिवारिकाः जनाः महात्मनः सान्निध्ये आध्यात्मिकमुपदेशं श्रोतुं गतवन्तः। महात्मना वैराग्यरसस्य वर्षा विहिता। तेन ज्ञापितम्—यः उत्पद्यते स विपद्यते। जन्मना सह मृत्युरवश्यं भाविनी। सर्वे उपदेशमाकर्ण्य शान्तिमन्वभवन्।

सप्ताहात् पश्चात् महात्मनोऽजायाः निधनमजनि। तदा महात्मा बाह्वस्वरेण अरोदीत्। पुनः पुनः अश्रुपातमकार्षीत्। तदा लोकैरपृच्छि—महात्मन्! तस्मिन् दिने भवतोदितम्—वियोगः समभावेन सोढव्यः। अद्य कथं विलपति भवान्। महात्मानवाचि—सः ग्राम्यजनो मदीयो नाभूत्, इयमजा मामकीना आसीत्।

यत्र ममत्वं तत्र दुःखम्।

६१. चाण्डाल कौन ?

एक महात्मा तीर्थ स्थान में स्नान करके आया। मार्ग में एक चाण्डालिनी मिल गई, महात्मा का उससे थोड़ा स्पर्श हो गया। उसने क्रोधित होकर चाण्डालिनी को गालियां दी। तब चण्डालिनी ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—यह मेरा पति है। यह सुनकर जनसमूह एकत्रित हो गया। इस विचित्र दृश्य को देखकर सभी विस्मित से हो गए। महात्मा ने बार-बार कहा—यह झूठ बोलती है, मैं महात्मा हूँ। चाण्डालिनी ने कहा—यह महात्मा मृषाभाषी है, यह मेरा पति है। इसका निर्णय करने के लिए लोगों ने दोनों को कोर्ट में ले जाने का निर्णय किया। जब महात्मा चाण्डालिनी के साथ जा रहा था तब मार्ग में वह सारी बात का मर्म समझ गया। उसने सोचा—मैंने क्रोध किया, इसलिए मुझे यह चाण्डाल बता रही है। उसका दिमाग बिल्कुल शांत हो गया। वह मन ही मन हँसने लगा। उसने अपनी गलती का अनुभव किया। जब कोर्ट में न्यायाधीश ने चाण्डालिनी को पूछा—क्या यह तेरा पति है। चाण्डालिनी ने कहा—पहले था, अब नहीं है। पहले इसके मन में क्रोध रूपी-चण्डाल प्रविष्ट हो गया था। इसलिए मेरा पति हो गया। यह सुनकर सब हँसने लगे। चाण्डालिनी ने कहा—क्रोध सबसे बड़ा चाण्डाल है। इसने मेरा स्पर्श होने से बहुत क्रोध किया। इसीलिए मेरा पति हो गया। सारी घटना सुनकर न्यायाधीश हँसने लगा। मनुष्य जाति से नहीं, क्रोध करने से चण्डाल होता है।

६२. ममत्व

किसी परिवार में एक भाई की मृत्यु हो गई। उस परिवार के सदस्य महात्मा के पास आध्यात्मिक संबल लेने गए। महात्मा ने वैराग्य रस की वर्षा की। उन्हें उपदेश देते हुए कहा—जो जन्म लेता है, वह मरता है, किसी को शोक नहीं करना चाहिए।

एक सप्ताह बाद महात्मा की बकरी मर गई। तब महात्मा जोर-जोर से रोने लगा, अश्रुपात करने लगा। तब लोगों ने कहा—उस दिन आपने कहा था—वियोग संसार का अटल नियम है, उसे समभाव से सहन करना चाहिए। तब फिर आज आप बकरी के वियोग में कैसे विलाप कर रहे हैं? तब महात्मा ने कहा—वह ग्राम्यजन मेरा नहीं था, यह बकरी मेरी थी।

जहां ममत्व है, वहां दुःख है।

६३. सजातीयताडनम्

स्वर्णकारस्य लोहकारस्य आपणौ निकटवर्तिनौ आस्ताम्। द्वावपि आपणाद् बहिः स्वकार्ये संलग्नौ अभूताम्। अयस्कारस्य प्रहारेण अयसः एकं लघीयः शकलं त्रुटित्वा उपकनकं पतितम्। तदा कलधौतेनायः प्रोक्तम्—आवां द्वावपि परेषां ताडनानि सहावहे। आवयोरेषा नियतिरस्ति, परमहं मौनमाधाय धैर्येण सहे। त्वं तारस्वरेण रोदिसि। तदा लोहेनावाचि—मित्र! अहं सहनेऽक्षमो नास्मि। परं मम सजातीयः एव माम् ताडयति, एतदर्थमाक्रन्दामि।

सजातीयस्य ताडनं दुःसहं दुःखदं भवति।

६४. जीवनस्य द्वे रूपे

एकश्चित्रकारः कस्याश्चिन् मनोरमायाः आकृतेश्चित्रं निर्मातुं चिन्तितवान्। दीर्घकालीनान्वेषणेन एकः सुरम्यः शान्ताननो बालको वीक्षितः। स तस्य चित्रं निर्ममौ। तेन तस्य मनस्तोषो जज्ञे। तत् विलोकं विलोकं अयमप्यमानन्दमनुबभूव।

दशाब्दपश्चात् सः मलिनं विकृतास्यं मानवं चित्रयितुं कल्पितवान्। तादृशं नरं मार्गयितुं स एकस्मिन् कारागारे जगाम। सः तत्र एकं युवानं वीक्षितवान्। सः तस्याकृतिं वारं वारं विलोकते। तदा सः युवा पप्रच्छ-भवान् मां पुनः पुनः कथं पश्यति। तेन कथितम् अहं तव चित्रं निर्मास्यामि। तरुणोऽब्रवीत्—यदाहं बालोऽभवम्, तदापि भवता मम चित्रं निर्मितम्। इदं निशम्य चित्रकारो विस्मयाब्धौ निमग्नः। तेन विस्मितचेतसा पृष्टः—त्वयि एतादृशं परिवर्तनं कथं जज्ञे? तेन वाष्पपातं कुर्वाणेन कथितम्—कुसंगतेः परिणामोऽयम्।

६३. सजातीय

सोनार और लोहार की दुकानें पास-पास में थी। दोनों दुकानों के बाहर काम करते थे। लोहार की चोट से लोहे का एक टुकड़ा टूटकर सोने के पास गिर गया। तब सोने ने कहा—हम दोनों दूसरों के द्वारा प्रताड़ित होते हैं। यह हमारी नियति है। पर मैं चुपचाप धीरज से सहन करता हूँ। तुम जोर-जोर से रोते हो। तब लोहे ने कहा—मैं चोट सहने में अक्षम नहीं हूँ, पर मेरा सजातीय लोहा ही मेरे पर चोट करता है, इसलिए मैं आक्रन्दन करता हूँ।

सजातीय की चोट अधिक दुस्सह और दुःखद होती है।

६४. जीवन के दो रूप

एक चित्रकार ने किसी मनोरम आकृति का चित्र बनाने का विचार किया। लंबे समय तक खोजने के बाद एक सुरम्य और शान्त मुख वाला बालक मिला। उसने उसका चित्र बनाया। इससे उसके मन में संतोष का अनुभव हुआ, उस चित्र को बार-बार देखकर वह आनन्द का अनुभव करता।

लगभग दश वर्षों के बाद उसने एक विद्रूप आकार वाले व्यक्ति का चित्र बनाने का विचार किया। ऐसे मानव को खोजने के लिए वह एक कारागार में गया। उसने एक विकृत आकार वाले व्यक्ति को देखा। जब वह उसे बार-बार देखने लगा तब उस युवक ने पूछा, मेरी ओर बार-बार क्यों देखते हो? उसने कहा—मैं तेरा चित्र बनाऊंगा, वह तरुण बोला—जब मैं बालक था तब भी मेरा चित्र आपने बनाया था। यह सुनकर वह चित्रकार आश्चर्यचकित हो गया। उसने युवक से पूछा—तेरे में इतना परिवर्तन कैसे हुआ। उसने अश्रुपात करते हुए कहा—यह कुसंगति का फल है।

६५. शिक्षायाः स्वरूपम्

पाण्डवाः कौरवाः द्रोणाचार्यस्य आश्रमे विद्याभ्यासमकार्षुः। एकदा द्रोणाचार्येण समस्ता छात्राः निर्दिष्टाः—‘क्रोधं मा कुरु’ एष पाठः स्मर्त्तव्यः। एकं छात्रमतिरिच्य सर्वे छात्राः अजल्पन्, गुरुदेव! अस्माभिः पाठः स्मृतः। आचार्येण द्विः त्रिः पाठः उच्चारितः तथापि सः छात्रोऽवोचत्—मया न स्मृतः। आचार्येण तस्मै एका चपेटिका दत्ता। तदानीं सः छात्रोऽवदत्—गुरुदेव! साम्प्रतं मया पाठः स्मृतः। द्रोणाचार्येण सविस्मयमपृच्छि—प्रिय विनेय! इदानीं त्वया कथं स्मृतः। तदा छात्रेण सविनयं न्यवेदि। तस्य विद्यार्थिनोऽभिधानमभूत् धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।

‘क्रोधं मा कुरु’ एते शब्दास्तु तत्कालमेव मया स्मृताः। परं यदा भवद्भिः चपेटिका दत्ता तदा मया शान्त्या सोढा। तत्पश्चात् स पाठः मम आत्मसात् जातः। तदानीं पाठो यथार्थतया स्मृतः।

द्रोणाचार्येणोदितम्—तव व्याख्यया मया शिक्षायाः व्यावहारिकं स्वरूपमवगतम्।

६६. समाधानम्

पितामहः पौत्रम् अस्निह्यत्। शैशवावस्थायां पुत्रपुत्रः प्रत्यहं पितामहेन सहाशनमकार्षीत्। एकदा बाल्यस्वभावेन नप्ता अरुषत्। तेन पितामहोऽवाचि—अद्य अहं भवता साकं भोजनं न करिष्यामि। पितृपिता विवेकशीलः, शान्तस्वभावश्चासीत्। तेन तस्य शिरसि करस्पर्शं विधाय स्मिताननेन अभाणि—अद्य त्वया मयामा न खादितव्यम्, अहं त्वयामा खादिष्यामि। भवान् मया सह खादतु।

ये धीराः गम्भीराः समन्वयशीलाः अभिभावकास्ते परिवारस्य समस्याः सहजतया समादधते।

६५. शिक्षा का स्वरूप

कौरव पांडव विद्यार्थी द्रोणाचार्य के आश्रम में पढ़ते थे। एक बार आचार्य ने सभी छात्रों से कहा—‘क्रोधं मा कुरु’—इस पाठ को याद करो। एक विद्यार्थी को छोड़कर सबने कहा—हमें याद हो गया। द्रोणाचार्य ने दो तीन बार पाठ बोला—पर उस विद्यार्थी ने कहा—गुरुदेव! मुझे अभी तक याद नहीं हुआ। आचार्य ने तब झुंझलाहट से उस विद्यार्थी के एक चपेटे की लगाई। चपेटे की लगते ही उस विद्यार्थी ने कहा—गुरुदेव! मुझे पाठ याद हो गया। यह सुनकर द्रोणाचार्य को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने सर पर हाथ रखकर प्यार से पूछा—वत्स! इतनी देर याद नहीं हुआ अब कैसे याद हो गया। उस विद्यार्थी का नाम था धर्मपुत्र युधिष्ठिर। उसने कहा—जहां तक शब्दों का सवाल है, वे तो पहली बार में ही मुझे याद हो गए थे। पर जब आपने मेरे थप्पड़ लगाई, तब मैंने शान्ति से सहन किया। उसके बाद वह पाठ आत्मसात् हो गया। तब पाठ यथार्थ रूप से याद हो गया।

द्रोणाचार्य युधिष्ठिर के विचार सुनकर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा—आज मुझे शिक्षा के व्यावहारिक स्वरूप का ज्ञान हुआ है।

६६. समाधान

दादा पोते से बहुत प्यार करता था। शैशव अवस्था में पोता दादे के साथ भोजन करता था। एक बार बाल्य स्वभाव से पोता दादा से रूठ गया। उसने कहा—दादा! मैं आपके साथ भोजन नहीं करूंगा। विवेकशील, शान्त स्वभावी दादा ने कहा—तुम मेरे साथ मत करना, मैं तेरे साथ करूंगा। पोते ने कहा—आप मेरे साथ कर सकते हैं। दोनों का तात्पर्य एक था।

जो धीर, गंभीर और समन्वयशील होते हैं, वे पारिवारिक समस्याओं का सहजता से समाधान कर लेते हैं।

६७. गर्जनम् वर्षणम्

सुकरातस्य सधर्मिणी उग्रस्वभावाऽसीत्। एकदा सा कोपारुणाऽभूत्। यदा सुकरातो गेहमायातः तदा नानाविधानपशब्दान् सोवाच। पश्चात् एकेन पात्रेण आविलमम्बु तस्य शिरसि प्राक्षिपत्। तदा सुकरातेन हसतोदितम्—मया प्रागेव अनुमितम्—गालीनां गर्जारवस्य पश्चात् त्वं वर्षिष्यसि एव।

धवस्य वचनानि संश्रुत्य भार्यायाः कोपः शान्तोऽजनि। “क्षमाशस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति” एतत् प्रेरणाप्रदं पद्यं सदा स्मर्तव्यम्।

६८. सफलताया मन्त्रः

विश्वविख्यातवैज्ञानिकः आइंस्टीनः छात्रैः पृष्टः—सफलतायाः को मन्त्रः। वैज्ञानिकेन कथितम्—‘आत्मविश्वासः’। वयम् अस्मिन् विषये भवदीयाननुभवान् शुश्रूषवः। आइंसटीनेन व्याहृतम्—अहमारम्भे अध्ययने मन्दमेधा अभूवम्। गणिते मम ग्रहणशक्तिः दुर्बलासीत्। सहपाठिनः कक्षायां मम पृष्ठे ‘मूढः बालिशः’ इत्यादि शब्दान् लिखितवन्तः। परं तथापि मम मनोबलं दुर्बलं नाजनि। मम मानसे आत्मविश्वासस्य ज्योतिः प्रज्वलितमऽभूत्।

युष्माभिः सदा स्मर्तव्यम्—आत्मविश्वासः सफलताया मन्त्रोऽस्ति।

६७. गर्जन और वर्षण

सुकरात की पत्नी का स्वभाव बहुत उग्र था। एक दिन वह बहुत कोपारुण थी। जब सुकरात घर पर आया तो वह नाना प्रकार के अपशब्द बोलने लगी। बाद में पत्नी ने एक गन्दे पानी का पात्र उसके शिर पर उंडेल दिया। तब सुकरात ने हंसते हुए कहा—मैंने पहले ही अनुमान लगा लिया था—गालियों के गर्जारव के बाद वर्षा जरूर होगी। मेरा अनुमान सही निकला।

पति के वचन सुनकर पत्नी का क्रोध शांत हो गया। 'क्षमा शस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति' यह प्रेरक सुभाषित सबको याद रखना चाहिए।

६८. सफलता का मंत्र

विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टीन से छात्रों ने पूछा—सफलता का मन्त्र क्या है? आइन्स्टीन ने कहा—आत्म-विश्वास। छात्रों ने कहा—हम इस विषय में आपके अनुभव सुनना चाहते हैं। वैज्ञानिक ने कहा—प्रारंभ में मेरी बुद्धि बहुत कमजोर थी। गणित में मेरी ग्रहण शक्ति दुर्बल थी। सहपाठी मेरी पीठ पर मूर्ख, मूढ़ लिख देते थे। फिर भी मेरा मनोबल ऊंचा था। मेरे मानस में आत्म-विश्वास की ज्योति प्रज्वलित थी। तुम्हें सदा याद रखना चाहिए—आत्म-विश्वास सफलता का मंत्र है।

६९. शब्दानामुपहारः

एकः पण्डितः राज्यसभायां क्षितिपस्य स्तवने कवितापाठमकार्षीत्। वसुधाधिपेन स्तवनमाकर्ण्य कथितम्—मनीषिर्मूर्धन्य! कल्पे तुभ्यमुपहरिष्यामि। द्वितीयवासरे कविः पुनः समागतः। सः दीर्घकालावधि राज्यसभायामुपहारप्रतीक्षायामुपाविशत्। परं भूपेन किमपि नोपहृतम्। यदा कविः उपहारमयाचिष्ट तदा पार्थिवेनोदितम्—भवता मह्यं मधुराः शब्दाः उपढौकिताः, मया अपि भवते आल्हादकारिणः शब्दाः उपहृताः। नरेशस्योद्गारान् निशाम्य लब्धवर्णः नैराश्यमापत्। केवलं वाणीविलासेन कार्यसिद्धिर्न स्यात्।

७०. मानवनिर्माणम्

विश्वमानचित्रस्य पृष्ठभागे मानवस्य चित्रमपि अभूत्। तातेन मानचित्रस्य शकलानि कृतानि। पश्चात् तनयो निर्दिष्टः, विश्वस्य मानचित्रं पुनः निर्माहि। तेन बहु प्रयतितम्, परं सफलता नोपलब्धा। पश्चात् तेन मानवस्य चित्रं निर्मितम्। मानवस्य चित्रेण सह विश्वस्य मानचित्रम् स्वतः निर्मितं सञ्जातम्।

अद्यतनाः जनाः विश्वनिर्माणं प्रति बहु चिन्तयन्ति, परं मानवनिर्माणं मेव विश्व-निर्माणस्य मूलम्।

६९. शब्दों का उपहार

एक पंडित ने राजा की स्तुति में कविता पाठ किया। राजा ने स्तुति सुनकर कहा—मनीषि मूर्धन्य! मैं कल आपको उपहार दूंगा। दूसरे दिन वह कवि फिर राजसभा में आया। वह वहां कई देर तक उपहार की प्रतीक्षा में बैठा रहा। पर राजा ने कुछ भी नहीं दिया। तब कवि ने उपहार की याचना की। राजा ने कहा—आपने मुझे शब्दों की भेंट दी, मैंने भी शब्दों से आपको आह्लादित कर दिया। राजा के उद्गार सुनकर विद्वान निराश हुआ।

केवल वाणी विलास से कार्य सिद्ध नहीं होता।

७०. मानव का निर्माण

विश्व के मानचित्र के पीछे मनुष्य का चित्र भी था। पिता ने मानचित्र के कई टुकड़े कर दिए। बाद में पुत्र को कहा—इस चित्र को पुनः बना। उसने बहुत प्रयास किया पर सफलता नहीं मिली। बाद में उसने विश्व का चित्र बनाना छोड़कर फिर मनुष्य का चित्र बनाया। मानव के चित्र के साथ विश्व का मानचित्र स्वतः बन गया। आज के लोग विश्वनिर्माण के प्रति बहुत चिंता करते हैं पर मानव का निर्माण ही विश्व- निर्माण का मूल है।

७१. लघीयानपि महान्

यदा सहस्रांशुरस्ताचलं प्रति व्रजन्नासीत्, तदा तेन एका विशाला परिषदामन्त्रिता। परिषदि तेन सर्वे सूचिताः—साम्प्रतमहं अस्ताचलं गच्छामि। ममानुपस्थित्याम् अस्मिन् विश्वे आलोकं को वितनिष्यते। तदा लघुगृहमणिना अवाचि—अहं भवदुपमं प्रकाशं प्रसारयितुं नार्हामि, परं भावत्कानुपस्थित्यां तमोऽल्पीकर्तुम् अवश्यं प्रयतिष्ये। भास्करः स्नेहप्रियस्योद्गारमाकर्ण्य समतुषत्। यः स्वार्हतानुसारं निजं दायित्वं निर्वहति, सः लघीयानपि महान्।

७२. लक्ष्यस्य निर्धारणम्

एको मानवो वाहने आरूढः। वाहकेन पृष्टः—त्वं कुत्र जिगमिषसि? तेन कथितम्—अहं श्वसुरालयं जिगमिषुरस्मि। तव श्वसुरालयः कुत्रास्ति, तस्य किन्नामधेयम्। तदा तेनोक्तं—अहं किमपि न जानामि। श्वसुरालयः कुत्राऽस्ति, तस्य किन्नामधेयम्, मया किमपि न ज्ञायते? वाहकः तस्योत्तरं संश्रुत्य मनसि उपजहास। जीवने गत्याः पूर्वं लक्ष्यस्य सम्यक् निर्धारणमावश्यकम्। अन्यथा गतेः श्रमोऽपार्थः एव स्यात्।

७१. लघु भी महान्

जब सूरज अस्ताचल की ओर जा रहा था तब उसने एक विशाल सभा आमंत्रित की। उसने सभा को सूचित किया—मैं अस्ताचल की ओर जा रहा हूँ, मेरे पीछे संसार में आलोक कौन फैलाएगा। लघु दीपक ने कहा—मैं आपके समान प्रकाश तो नहीं फैला सकता, पर आपकी अनुपस्थिति में अंधकार को कम करने का प्रयास अवश्य करूँगा। सूरज उसके उद्गार सुनकर संतुष्ट हुआ।

जो योग्यता के अनुसार अपना दायित्व निभाता है, वह लघु भी महान् है।

७२. लक्ष्य का निर्धारण

एक मानव किसी वाहन में यात्रा करने के लिए बैठा। जो वाहन को चलाने वाला था उसने उसे पूछा—तुम कहां जाना चाहते हो? उसने कहा—मैं ससुराल जाना चाहता हूँ। ससुराल कहां है? उस गांव का नाम क्या है? यह तो मैं नहीं जानता। उसका उत्तर सुनकर वह हंसने लग गया।

जीवन में गति के पहले लक्ष्य का निर्धारण आवश्यक है। अन्यथा गति का श्रम निरर्थक होता है।

७३. मानवस्य गवेषणा

यूनानराष्ट्रस्य एथेन्सनगरे एको दार्शनिको हस्ते प्रज्वलितां काचदीपिकां गृहीत्वा मध्याह्ने ब्रजन्नासीत्। तदा एकेन जिज्ञासुना अपृच्छि—साम्प्रतं काचदीपिकया किं अन्विष्यते। तदा दार्शनिकेनावचि—अहं मानवमन्विष्यामि। तत्र उपस्थिताः जनाः अवदन्—किं वयं सर्वे मानवाः न? तेनोदितं—आकारेण तु मया मनुष्याः दृश्यन्ते, परमहं तादृशान् गवेषयामि, ये आचारेण संपन्नाः अपि स्युः। आचारशून्याः नराः मम दृशा मृत्तिकापाञ्चालिका एव।

मानवस्य गरिमा, महिमा आकारेण नहि, आचारेण भवति।

७४. मूल्यांकनम्

स्वामी विवेकानन्दः शिकागोनगरे कुत्रचिद् गच्छन्नासीत्। तस्य वेषभूषामवलोक्य तत्रत्याः केचित्तरुणाः उपहासं कर्तुं संलग्नाः। विवेकानन्देन तेषां व्यङ्ग्यपूर्णाः वचनबाणाः समभावेन सोढाः। यदा ते तूष्णींभूताः तदा विवेकानन्देन धीर-गम्भीरगिराऽवाचि—युवानः! युष्माकं राष्ट्रे नृणामङ्गलं वासोभिः संजायते। अस्माकं राष्ट्रे ज्ञानेनाचारेण बोध्यते।

स्वामिनः आंग्लभाषायां मार्मिकं विवेचनं संश्रुत्य ते प्रभाविताः, श्रद्धानताश्च व्यजनिषत।

७३. मानव की खोज

यूनान के एथेन्स नगर में एक दार्शनिक हाथ में लालटेन लेकर मध्याह्न में जा रहा था। एक जिज्ञासु ने पूछा—अभी लालटेन लेकर क्या खोजते हो? दार्शनिक ने कहा—मैं आदमी खोज रहा हूँ। वहां उपस्थित सभी लोगों ने कहा—क्या हम आदमी नहीं हैं। आकार से तो सभी मनुष्य दिखाई देते हैं, पर मैं ऐसे मानवों की खोज कर रहा हूँ, जो आचार संपन्न भी हो। आचार शून्य मनुष्यों को मैं मिट्टी की पुतली मानता हूँ। मनुष्य की गरिमा और महिमा आकार से नहीं, आचार से होती है।

७४. मूल्यांकन

स्वामी विवेकानन्द शिकागो नगर में कहीं जा रहे थे। उनकी वेषभूषा देखकर वहां के युवक उनका उपहास करने लगे। विवेकानन्द ने उनके व्यंग्य भरे वचन बाणों को समभाव से सहा। जब वे मौन हुए तो उन्होंने धीरे गंभीर वाणी में समझाया—तुम्हारे देश में मनुष्य की कीमत वस्त्रों से होती है, हमारे राष्ट्र में ज्ञान और आचार से होती है।

स्वामी विवेकानन्द के अंग्रेजी भाषा में विचार सुनकर वे बहुत प्रभावित और श्रद्धानत हुए।

७५. सत्यनिष्ठा

एकदा अध्यापकेन कक्षायाम् एकः प्रश्नः समाधातुं प्रदत्तः। प्रश्नः कठोरोऽभूत्। अतः एकं छात्रमृते अन्यैः कैरपि प्रश्नो न समाहितः। तस्य विद्यार्थिनः उत्तरं विलोक्य शिक्षकः आश्चर्यान्वितो जातः। स प्रसन्नीभूय तस्मै छात्राय पञ्चरूप्यकाणां पुरस्कारो दत्तः। तदानीं सः बालोऽरोदीत्। अध्यापकेन रोदनस्य कारणं जिज्ञासितम्! छात्रः यथार्थभाषी आसीत्। तेनोदितम्—गुरुवर्य! इदम् उत्तरं मया नहि लिखितम्, ममाग्रजेन लिखितम्। शिक्षकस्तस्य सत्यभाषणतः प्रभावितो जातः। पञ्च रूप्यकाणां पुरस्कारः पुनरदायि। ज्ञानेन सह यदि प्रामाणिकता स्यात् तर्हि ज्ञानम् सार्थकम् भवति।

सः विद्यार्थी आसीत् राष्ट्रस्य सुप्रसिद्धो नेता—गोपालकृष्ण गोखले।

७६. जीवनशोधनम्

महात्मागांधीमहोदयानां प्रारम्भिके जीवने कुसङ्गप्रभावेण नानाविध-दुर्व्यसनानां प्रवेशः जातः। दुर्व्यसनानां प्रभावेण ते ऋणग्रस्ताः संजाताः। ऋणमुक्तेरर्थं गांधीमहोदयैः स्वगृहे स्वर्णाभूषणानां स्तैन्यं कृतम्। शनैः शनैः तेषां जीवने परिवर्तनं जातम्। तत्पश्चात् तेषां मानसे अपराधबोध उत्पन्नः, स्वदुष्कृत्यान् प्रति ते ग्लानिमन्वभवन्। महात्मभिः स्व-मनःशान्त्यर्थं जनकाय पत्रं लिखितम्। तस्मिन् पत्रे स्वकीयाः सर्वाः दुष्प्रवृत्तयः सूचिताः। जनकाय क्षमायाचनां कुर्वद्भिः आयतौ एतादृशीः त्रुटीः नाचरिष्यामि, अयं संकल्पः प्रकटीकृतः। तातः पत्रं पठित्वा प्राहृष्यत् तथैकं पत्रं लिखित्वा क्षमा प्रदत्ता।

स्खलनस्य आर्जवभावेन स्वीकरणं यथार्थं प्रायश्चित्तम्।

७५. सत्यनिष्ठा

एक बार अध्यापक ने कक्षा में एक प्रश्न का उत्तर लिखने का छात्रों को निर्देश दिया। प्रश्न कठिन था। इसलिए एक छात्र को छोड़कर किसी छात्र ने प्रश्न को हल नहीं किया। उसका उत्तर देखकर गुरु आश्चर्यचकित हुआ। उसने प्रसन्न होकर पांच रुपयों का पुरस्कार दिया। पुरस्कार पा वह रोने लगा। अध्यापक ने रोने का कारण पूछा। उसने कहा—यह उत्तर मैंने नहीं मेरे बड़े भाई ने लिखा है। शिक्षक उसके सत्य भाषण से प्रभावित हुआ। उसने पांच रुपयों का पुरस्कार और दिया। ज्ञान के साथ प्रामाणिकता ही तो ज्ञान सार्थक हो जाता है। वह विद्यार्थी था राष्ट्र के प्रसिद्ध नेता गोपालकृष्ण गोखले।

७६. जीवन का शोधन

महात्मा गांधी के प्रारंभिक जीवन में कुसंग के प्रभाव से कई दुर्व्यसनों का प्रवेश हो गया। दुर्व्यसनों के प्रभाव से वे ऋणग्रस्त हो गए। ऋणमुक्त होने के लिए अपने घर में स्वर्णाभूषणों की चोरी की। धीरे-धीरे उनके जीवन में परिवर्तन हो गया। उसके बाद गांधीजी के मानस में अपराध बोध हो गया। उन्हें अपनी त्रुटियों के लिए ग्लानि का अनुभव होने लगा। अपने मन की शांति के लिए उन्होंने अपने पिताश्री को एक पत्र लिखा। उसमें अपनी त्रुटियों के लिए क्षमायाचना की और आगे ऐसी गलतियां नहीं करने का संकल्प प्रकट किया। पिता ने पत्र लिखकर प्रसन्नता प्रकट की, पिछली भूलों को क्षमा कर दिया। स्वलना को सरलता से स्वीकार करना सच्चा प्रायश्चित्त है।

७७. पुनर्मूषको भव

महात्मनः उपासनायामेको मूषकः आसिष्ट। महात्मना सोऽपृच्छि—त्वं संतुष्टोऽसि? अहं विडालात् बिभेमि, यदि अहं बिडालः स्याम् तदा निर्भयो भविष्यामि। महात्मना तथास्तु कथितम्। सः बिडालो जातः। द्वित्रिदिवसपश्चात् महात्मना पुनः सः पृष्टः—साम्प्रतं तु कापि समस्या नास्ति। सोऽवोचत्—अहं शुनो बिभेमि, यदि अहं सारमेयः स्याम् तदा वरम्। महात्मना तथास्तु कथितम्—सः भ्रष्टोऽभवत्। महात्मना पुनर्जिज्ञासितम्—अधुना तु प्रसन्नोऽसि? तेनोक्तम्—यदा निशायां पञ्चाननो गर्जति, तदा भीषणभयानुभूतिर्जायते। तदा महात्मना व्यचिन्ति—मया वपुः परिवर्तितम्, परमस्य आत्मा तु बिलेशयस्य विद्यते, केवलं भूधनपरिवर्तनेन अस्य भयसंज्ञा न नङ्क्ष्यति। एवं विचार्य महात्मा 'पुनर्मूषको भव' अचीकथत्। सः पुनः मूषको बभूव।

अन्येषां कृपया बहिस्तनं परिवर्तनं जायते, आन्तरिकं रूपान्तरणम् स्वस्य साधनया एव भवति।

७८. प्रगतेः दिशा

स्वामी रामतीर्थेन निजकक्षायां कृष्णपट्टे एका पङ्क्तिः निर्मिता। तेन छात्राः निर्दिष्टाः। पङ्क्तेः स्पर्शमृते एतां लघुकुर्वन्तु। कक्षायाः छात्राः विस्मयमग्नाः सञ्जाताः। तैश्चिन्ततं स्पर्शमन्तरेण कथं लघुं कुर्महे। एको विद्यार्थी मेधावी आसीत्। तेन तस्याः पङ्क्तेः उपरिष्ठात् एका ततोऽपि महीयसी अन्या पङ्क्तिः निर्मिता। तेन सा पङ्क्तिः स्पर्शमन्तरा लघुर्जाता।

रामतीर्थेन तस्मै विद्यार्थिने धन्यवादः प्रदत्तः। अस्य स्पष्टीकरणं कुर्वाणेन स्वामिनोदितम् प्रत्येकं मानवेन प्रगतिः कर्तव्याः, परमन्यान् कर्त्तित्वा प्रगतिः साम्प्रतं न।

७७. पुनर्मूषको भव

महात्मा के पास एक चूहा बैठा था। महात्मा ने पूछा—क्या तुम संतुष्ट हो? चूहे ने कहा—मैं बिल्ली से डरता हूँ। यदि मैं बिल्ली बन जाऊँ तो निर्भय हो जाऊँगा। महात्मा ने 'तथास्तु' कहा और वह बिल्ली बन गया। दो तीन दिन बाद महात्मा ने फिर पूछा—अब तो कोई समस्या नहीं है? मैं कुत्ते से डरता हूँ। यदि मैं कुत्ता बन जाऊँ तो बहुत अच्छा होगा। महात्मा ने तथास्तु कहा और वह कुत्ता बन गया। महात्मा ने कहा—अब तो प्रसन्न हो? उसने कहा—जब रात्रि में सिंह गर्जन करता है तो मुझे भीषण भय की अनुभूति होती है। महात्मा ने सोचा—मैंने शरीर का परिवर्तन कर दिया, पर, इसकी आत्मा तो चूहे की है। शरीर के परिवर्तन से भय की संज्ञा नष्ट नहीं होगी ऐसा विचार कर 'पुनर्मूषको भव' कहकर उसे चूहा बना दिया।

दूसरों की कृपा से बाहर का परिवर्तन होता है, पर आंतरिक परिवर्तन स्वयं की साधना से होता है।

७८. यथार्थ प्रगति

स्वामी रामतीर्थ ने अपनी कक्षा में ब्लैक बोर्ड पर एक पंक्ति का निर्माण किया। उन्होंने अपनी कक्षा में छात्रों से कहा—पंक्ति का स्पर्श किए बिना इसे छोटी बनाओ। कक्षा के छात्रों ने सोचा—इसे बिना छूए छोटी कैसे बनाएं, वे विस्मय में पड़ गए। एक विद्यार्थी बुद्धिमान था। उसने उसके ऊपर उससे एक बड़ी पंक्ति और खींच दी। इससे वह बिना छूए छोटी बन गई।

रामतीर्थ ने उस विद्यार्थी को धन्यवाद दिया। इसका मर्म समझाते हुए कहा—दूसरों को काटे बिना प्रगति करनी चाहिए। वही सच्ची प्रगति है।

७९. चरैवेति चरैवेति

एको धान्यव्यापारी राष्ट्रस्य विभाजनसमये पाकिस्तानात् दिल्ली-महानगरे समागतः। तेन विविधाः प्रयत्नाः कृताः, परं साफल्यं नापि। सः ऋणग्रस्तः सञ्जातः। शनैः शनैः सः गहने नैराश्याम्बुधौ निमग्नः। अस्यां स्थितौ विषादग्रस्तेन तेन आत्महत्यायाः निर्णयो व्यथायि। सः निमज्जनार्थम् यमुनापगायाः तटे जगाम। तत्र तेनानुभूतम्-इयं प्रवहमाना सरित् कलकलरवेन सर्वेभ्यो संदिशति—'चरैवेति-चरैवेति'। इयं नानावरोधान् समभावेन सोढ्वा लक्ष्यं प्रति अवनवरतं प्रधावति। अहं अवरोहेण विचलितोऽभवम्। एकधाऽहं पुनः प्रयतिष्ये। तेन ततः नवां प्रेरणां, ऊर्जामुपलभ्य पुनः व्यापारं आरेभे।

तस्य भाग्योदयः सञ्जातः। क्रमशः सः प्रगतिशिखरमारूरोह। साम्प्रतम् सः राजधान्याः व्यापारिषु ख्यातनामा वरिवर्त्ति।

प्रगतिः जीवनम्, स्थितिः मृत्युः, 'चरैवेति-चरैवेति' अयं मन्त्रः सदा स्मर्तव्यः।

८०. अभ्यासेन विकासः

बोपदेवो मन्दमतिरासीत्। तस्य स्मरणशक्तिरतीव दुर्बलाऽभवत्। गुरुणा कक्षायां सः पुनः पुनः तिरस्कृतः प्रताडितश्च। तेन स घोर-हताशोऽभूत्। एकदा गुरुं विना संसूच्य बोपदेवः कक्षायाः बहिर्जगाम। दिग्मूढो भूत्वा सघने कानने व्रजितवान्। तत्र एकमन्धुं निकषा उपाविशत्। तत्र आसीनेन तेन एकः पाषाणो व्यलोकि। रज्ज्वा वारं वारं घर्षणेन सोऽपि अघर्षीत्। यदा शिलोपलः घृष्टः तदा पुनः पुनः घर्षणेन मम बुद्धिरपि घृष्टा भविष्यति। सः नैराश्यमपहाय पुनः पाठशालायामाजगाम। गुरुभ्यः क्षमा-याचनां विधाय मनोयोगेन अध्ययनमारब्धम्। शनैः शनैः विकासं विधाय कक्षायां प्रथमं स्थानमलमकार्षीत्। तस्य वैदुष्यगाथा सर्वत्र प्रसृता।

जीवनस्य उत्तरार्धे दाक्षिणात्यनरेशस्य महादेवस्य सभायां पाण्डित्यपदं सनाथीकृतवान्। बोपदेवो मुग्धबोधाभिधानं संस्कृत-भाषायाः सरलं व्याकरणं निर्मितवान्।

७९. चरैवेति चरैवेति

एक अनाज का व्यापारी राष्ट्र के विभाजन के समय पाकिस्तान से दिल्ली आया। उसने नाना प्रकार के प्रयत्न किये। पर सफलता नहीं मिली। वह ऋणग्रस्त हो गया। धीरे-धीरे वह गहरी निराशा के समुद्र में निमग्न हो गया। ऐसी स्थिति में विषादग्रस्त होकर उसने आत्महत्या का निर्णय किया। वह डूबने के लिए यमुना नदी के किनारे पर गया। वहां उसने अनुभव किया यह बहती हुई नदी कल-कल ध्वनि से सबको आगे बढ़ो, आगे बढ़ो का संदेश दे रही है। यह नाना प्रकार के अवरोधों को समभाव से सहन करती हुई लक्ष्य के प्रति निरन्तर दौड़ रही है। मैं अवरोह के कारण विचलित हो गया। मैं एक बार फिर प्रयत्न करूंगा। उसने नदी से नई प्रेरणा और ऊर्जा प्राप्त कर पुनः व्यापार शुरू किया।

उसका भाग्योदय हुआ। वह क्रमशः प्रगति के शिखर पर आरूढ़ हो गया। अभी वह राजधानी का प्रसिद्ध व्यापारी है।

प्रगति जीवन है, ठहरना मृत्यु है। 'चरैवेति चरैवेति' इस मन्त्र को सदा याद रखना चाहिए।

८०. अभ्यास से विकास

बोपदेव की बुद्धि मन्द थी। उसकी ग्रहणशक्ति दुर्बल थी। शिक्षकों द्वारा वह कई बार तिरस्कृत हुआ, प्रताड़ित भी हुआ। इससे वह घोर निराशा हो गया। एक बार अध्यापक को बिना पूछे कक्षा के बाहर चला गया। वह दिग्मूढ़ सा बना हुआ गहरे जंगल में चला गया। वहां एक कुएं के पास बैठ गया। वहां बैठे-बैठे उसने एक पत्थर को देखा। वह पत्थर डोरी के बार-बार घर्षण से घिस गया। उसे देखकर उसके मानस में प्रेरणा जागृत हुई—जब पत्थर घिस सकता है तो पुनः पुनः घर्षण से मेरी बुद्धि क्यों नहीं घिसेगी। वह निराशा का त्याग कर फिर पाठशाला में आया। गुरु से क्षमायाचना कर मनोयोग से पढ़ना शुरू किया। धीरे-धीरे अध्ययन कर उसने कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। आगे जाकर वह महान् विद्वान् बना। उसकी ख्याति सर्वत्र प्रसृत हुई।

जीवन के उत्तरार्द्ध में दक्षिण के राजा महादेव की सभा में पाण्डित्य पद से सुशोभित हुआ। बोपदेव ने मुग्ध बोध नामक सरल संस्कृत व्याकरण का निर्माण किया।

८१. यादृक् स्वयं तादृशो ग्रामः

एको मनुष्यः कस्मिंश्चद् ग्रामे प्रथमवारं समागच्छत्। तेन तत्रत्यः एको वृद्धोऽपृच्छि—अयं ग्रामः कीदृशोऽस्ति? अत्रत्यानां जनानां व्यवहारः कीदृशः? वृद्धेन प्रतिप्रश्नः कृतः, त्वं यतो ग्रामात् समायातः सः कीदृशोऽस्ति? तेनोक्तम्—मान्यवर! सः ग्रामस्तु निकृष्टः, तत्रत्यानां व्यवहारो निन्दनीयः। वृद्धेनाभाणि—अयं ग्रामस्तु ततोऽपि निन्द्यः, अत्रत्यानां व्यवहारः निम्नस्तरः। तस्मिन्नेव क्षणे एकोऽन्यः पथिकः तत्र आयात्। तेनापि जिज्ञासितम्—अयं ग्रामः कीदृशः? वृद्धेन तस्मै अपि प्रतिप्रश्नः कृतः—त्वं यतः ग्रामात् समागतः, सः कीदृशोऽस्ति? तेनावाचि—मान्यवर! सः ग्रामस्तु प्रशंसार्हः, तत्रत्यानां नृणां व्यवहारः श्रेष्ठः। तदा वृद्धेन तत्कालमुदितं—अयं ग्रामस्तु श्रेष्ठतरः, अत्रत्यानामाचरणं श्रेयस्करम्।

वृद्धस्य विपरीतं प्रतिवचनमाकर्ण्य सः प्रथमः पथिकोऽवोचत्—मान्यवर! भवता एकस्यैव प्रश्नस्य भिन्नं-भिन्नं उत्तरं कथमदायि? तदा वृद्धेन कथितम्—यस्य यादृग् दृष्टिः तस्य कृते तादृगेव सृष्टिः। यादृग् जनः स्वयं भवति, तस्य कृते तादृग् एव ग्रामो भवति।

८२. दिनचर्या

रस्किनः केनापि कथितः—सः मानवोऽतीवमेधावी अस्ति। रस्किनोऽभणत्—अहं तस्य दिनचर्यामवजिगमिषामि। मम दृशा मेधावित्वस्य अङ्कनं सम्यग् दिनचर्या भवति। तस्य सर्वा दिनचर्या माकर्ण्य रस्किनः प्राहृष्यत्। सोऽवोचत् सः जनः वस्तुतः मेधावी वेविद्यते, यो नियमितमनुशासितं जीवनमनुसरति, स एव कोविदकुलालंकारो बोभवीति।

८१. गांव कैसा है?

एक मनुष्य किसी ग्राम में प्रथम बार आया। उसने वहां के एक वृद्ध व्यक्ति से पूछा—यह ग्राम कैसा है? यहां के लोगों का व्यवहार कैसा है? वृद्ध ने प्रतिप्रश्न किया—तू जिस गांव से आया है वह कैसा है? उसने कहा—वह गांव बहुत निकृष्ट है। वहां के लोगों का व्यवहार निंदनीय है। वृद्ध ने कहा—यह गांव तो वहां से निकृष्ट है यहां का व्यवहार वहां से निंदनीय है।

उसी समय वहां एक पथिक भी आ गया। उसने भी जिज्ञासा की—यह गांव कैसा है? उससे भी प्रतिप्रश्न किया—तुम जहां से आए हो वह गांव कैसा है? मान्यवर! वह गांव तो श्रेष्ठ है, वहां का व्यवहार भी प्रशंसनीय है। उस वृद्ध ने कहा—यह गांव तो उससे भी श्रेष्ठ है, यहां के लोगों का आचरण प्रशंस्य है। पहले वाले आदमी ने जब विपरीत उत्तर सुना तो उसने पूछा—आपने एक ही प्रश्न का विपरीत उत्तर क्यों दिया। वृद्ध ने कहा—जिसकी जैसी दृष्टि होती है, उसके लिए सृष्टि भी वैसी होती है। व्यक्ति स्वयं जैसा होता है, उसके लिए गांव भी वैसा ही हो जाता है।

८२. दिनचर्या

विश्व विश्रुत विचारक रस्किन को किसी व्यक्ति ने कहा—अमुक व्यक्ति बहुत विद्वान है। रस्किन ने कहा—मैं उसकी दिनचर्या जानना चाहता हूं। मेरे विचार से विद्वत्ता की पहली कसौटी सही दिनचर्या है। उस मनुष्य की नियमित दिनचर्या सुनकर रस्किन संतुष्ट हो गया। उसने कहा—वह वास्तव में विद्वान व्यक्ति है।

जो नियमित और अनुशासित जीवन जीता है, वह प्रखर मेधावी हो सकता है।

८३. मूलस्य सेचनम्

एकं रमणीयमुद्यानमासीत्। तस्मिन् विभिन्नप्रकाराणि प्रसूनानि स्फुटितानि, विकसितानि व्यलसन्। तस्य उपवनस्य सेचनम्, संरक्षणं विदधाना जननी वृद्धा संजाता। तदा तनयेन सा प्रोक्ता—अम्ब! त्वं वृद्धा जज्ञे, अहं अस्य उपवनस्य सेचनं संरक्षणं विधास्यामि। जननी स्वीकृतिं प्रदत्तवती। सा निर्भारा निश्चिन्ताऽभवत्। मासद्वयस्य पश्चात् तयोद्यानस्य निरीक्षणमकारि। तथादर्शि—सर्वाणि पुष्पाणि म्लानानि जातानि। तदा तथा सूनुः उपालब्धः। किं त्वम् उपवनं न सिञ्चसि? तेन कथितम्—अहं प्रत्यहं सिञ्चामि। कथं सिञ्चसि? पुत्रेण जनन्या समक्षे सेचनम् विहितम्। अङ्गज! त्वमुपरिष्ठात् सिञ्चसि। पुष्पाणां प्राणानि मूले सन्ति। त्वया मूले नीरं दातव्यम्। सूनुना तथैव व्यधायि, सुमनांसि पुनः विकसितानि जातानि।

जीवनोपवनस्य पादपानां विकासार्थम् तेषां मूले सत्संस्कराणां तोयस्य सेचनमावश्यकमस्ति।

८४. धूर्तोऽतिथिः

एकेन जनेन अमितवित्तराशिरर्जितः। कुसङ्गस्य प्रभावेण तस्य जीवने दुर्व्यसनानां प्रवेशो जातः। तेन सः व्याधिग्रस्तोऽजनि। तस्य वार्धक्यमतीव कष्टप्रदमभवत्। तेन स्वानुभवेषु लिखितम्—दुष्प्रवृत्तयः धूर्ताः अतिथयः सन्ति। प्रारम्भे ताः प्रवृत्तयो मधुराः प्रतीयन्ते, परं धूर्तोऽतिथिरिव ताः पश्चात् दुःखदा दुस्त्यजाः भवन्ति।

८३. मूल का सिंचन

एक रमणीक और आकर्षक उद्यान था। उसमें नाना प्रकार के विकसित, प्रस्फुटित फूल थे। उस उद्यान का सिंचन करने वाली महिला वृद्ध हो गई। उसके लड़के ने कहा—मां! अभी आप वृद्ध हो गई है। मैं उपवन का अब सिंचन करूंगा। जननी ने स्वीकृति प्रदान की। वह निर्भार और निश्चिन्त हो गई। दो मास के पश्चात् वृद्धा ने उद्यान का निरीक्षण किया। उसने देखा—सारे फूल मुरझा गए हैं। तब वृद्धा मां ने पुत्र को उपालम्भ दिया और पूछा—क्या तुम सिंचन नहीं करते? पुत्र ने कहा—मैं प्रतिदिन करता हूं। कैसे करता है? जब लड़के ने सिंचन किया तब मां ने कहा—बेटा! तूं ऊपर से पानी डालता है। सिंचन जड़ों में करना चाहिए।

लड़के ने अपनी भूल का सुधार किया। उसके बाद पुनः जड़ों को सिंचने लगा। सभी फूल हंसने खिलने लगे। जीवन-उपवन के वृक्षों को हरा-भरा रखने के लिए उनकी जड़ों में सत्संस्कारों के पानी का सिंचन जरूरी है।

८४. धूर्त अतिथि

एक मनुष्य ने अपार धनराशि का अर्जन किया। कुसंग के प्रभाव से उसके जीवन में दुर्व्यसनों का प्रवेश हो गया। इससे वह व्याधिग्रस्त हो गया। उसका बुढ़ापा बहुत कष्टप्रद हो गया। उसने अपने अनुभवों में लिखा है—दुष्प्रवृत्तियाँ धूर्त अतिथि के समान हैं। वे प्रारम्भ में मधुर प्रतीत होती हैं। किन्तु धूर्त अतिथि की तरह उनसे छुटकारा पाना दुःखद और कठिन होता है।

८५. सूच्याः मार्गणम्

एकस्या वृद्धायाः हस्तात् सूची नीचैः पतिता। सा कुटीराद् बहिः राजपथे सीवनीमन्वेष्टुं संलग्ना। एकेन पथिकेन पृष्ठा-वृद्धे! किं गवेष्यते? मम सूची पतिता, अहं ताम् अनुसंदधे। सूची अत्र कथं पतिता? पान्थेनाऽपृच्छि। अत्र नहि, कुटीरे पतिता। कुटीरे पतिता सूची अत्र कथं प्राप्स्यते। बन्धुवर! कुटीरे प्रकाशो नास्ति, अतोऽत्र गवेषयामि। तदाऽध्वगेनोदितं—त्वया कुटीरे स्नेहप्रियः प्रज्वलितव्यः, तदैव सूचीत्व मुपलप्स्यसे। पान्थस्य परामर्शमुररीकृत्य तथैव कृतम्। कुटीरे पतिता सीवनी पुनः प्राप्ता।

यथार्थसुखस्य सूची अस्माभिरात्मनि गवेषणीया। भौतिके चमत्कारे तस्यापि न संभविनी।

८६. यथा दृष्टिः तथा सृष्टिः

योगेश्वरः श्रीकृष्णः युधिष्ठिरं दुर्योधनं पृथक् पृथक् कार्यमादिशत्। युधिष्ठिरमकथयत्—सप्ताहे यावन्तो दुर्जनाः मिलेयुः तेषां सूची त्वया निर्मातव्या। दुर्योधनमादिदेश—सप्ताहे यावन्तः सज्जनाः मिलेयुः तेषां सूची त्वया निर्मातव्या। सप्ताहान्ते श्रीकृष्णेन द्वयोः सूचीपत्रे विलोकिते। सूचीपत्रयोरेकमपि नाम न लिखितम्। तदा देवकीनन्दनेन युधिष्ठिरोऽपृच्छि—मया निर्दिष्टं कार्यं न विहितम्। धर्मपुत्रेणोदितं—मया एकोऽपि दुर्जनो न मिलितः। दुर्योधनं प्रच्छ—त्वयाऽपि मया सूचितं कार्यं न विहितम्। दुर्योधनो न्यवेदि—भगवन्! मया सप्ताहे एकोऽपि सज्जनो नोपलब्धः। यस्य यादृशी दृष्टिर्भवति, तत्कृते सृष्टिरपि तादृशी भवति।

८५. सूई की खोज

एक बुढ़िया के हाथ से सिलाई करते सूई गुम हो गई। वह राजपथ पर अपनी सूई खोजने लगी। एक राहगीर ने पूछा—बुढ़िया क्या खोज रही हो? उसने कहा—मेरी सूई गुम हो गई है, उसे खोज रही हूं। उसने कहा—सूई यहां कैसे गुम हो गई। यहां नहीं हुई, कुटीर में हुई थी। उस राहगीर ने कहा—कुटीर में गिरी सूई राजमार्ग में कैसे मिलेगी। कुटीर में अंधेरा है, बुढ़िया ने कहा। पथिक ने समझाया—कुटीर में अंधेरा है तो वहां दीपक जला। बुढ़िया ने कहना मानकर दिया जलाया और कुटीर में सूई मिल गई।

शांति की सूई आत्मा के मंदिर में हैं, बाहर की चकाचौंध में कहां मिलेगी।

८६. यथादृष्टि तथा सृष्टि

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर और दुर्योधन—दोनों के पृथक्-पृथक् काम बताया। युधिष्ठिर से कहा—सात दिनों में जितने बुरे आदमी मिले, उनके नाम रजिस्टर में दर्ज करना। दुर्योधन से कहा—एक सप्ताह में जितने अच्छे मानव मिले उनके नाम रजिस्टर में लिखना।

श्रीकृष्ण ने सात दिनों बाद दोनों के रजिस्टर देखे तो खाली थे। जब युधिष्ठिर को पूछा—क्या मेरे आदेश का पालन नहीं किया। धर्म पुत्र ने कहा—मुझे एक भी बुरा आदमी नहीं मिला, जिसे देखा गुण ही गुण दिखाई दिए। दुर्योधन से पूछा—तुमने भी मेरा काम नहीं किया। तो उसने कहा—मुझे एक भी सज्जन नहीं मिला।

श्रीकृष्ण ने कहा—जिसकी जैसी दृष्टि होती है उसके लिए वैसी ही सृष्टि होती है।

८७. गुणेष्व्वादरः कार्यः

एकस्य श्रेष्ठिनोऽन्तिके द्वौ कर्मचारिणौ कार्यरतौ आस्ताम्। एको गौरालालः, एकः कालूलालः। सः श्रेष्ठी द्वयोः स्वभावं परीक्षितुं चिन्तितवान्। एकदा गौरालालः कार्यार्थं बहिर्गतवान्। तदा श्रेष्ठी कालूलालमुवाच—अयं गौरालालो धूर्तः प्रतीयते। सः मम समक्षे तव परिवादमकार्षीत्। कालूलालोऽवोचत—गौरालालस्तु सज्जनोऽस्ति, मम जीवनेऽनेके दोषाः सन्ति। अहं तान् दूरीकर्तुं प्रयतिष्ये। श्रेष्ठी कालूलाल मजल्पत्—त्वमपि गौरालालस्य स्खलनाः ब्रूहि। श्रेष्ठिवर! कस्यापि दोषान् विवर्ण्य अहं मम रसनामशुद्धां न चिकीर्षुः।

एकदा कालूलालो बहिर्गतवान्। तदा वणिग्वरेण गौरालालोऽवाचि—अयं कालूलालो मायावी प्रतीयते। तस्य कार्यक्षमताऽपि नास्ति। गौरालालोऽवोचत्—भवतां कथनं समीचीनम्। कालूलालो नानावगुणानामाकरः। स परेषां दोषदर्शी। अयं गवां महिषीणां शुश्रूषायां नियोक्तव्यः।

इदं निशम्य श्रेष्ठी रोषारुणो भूत्वोदितवान्—मया युवयोः द्वयोः स्वभावो विदितः। सः तु गुणग्राहकोऽस्ति, त्वं दोषदर्शी असि। तं मम सेवायां नियुनज्मि। त्वां च पशूनां परिचर्यायां नियुनज्मि।

‘गुणेष्व्वादरः कार्यः।’ इत्यनुसारं श्रेष्ठिना गुणानामादरः कृतः।

८८. नियमितता

एको विद्यार्थी अनुशासितः नियमितश्च आसीत्। सः निश्चितसमये प्रार्थनासभायाम् आगच्छत्। तस्य नियमितव्यवहारेण प्रधानाध्यापकः प्रजहर्ष। एकदा प्रार्थनायाः समयोऽजनि। सः विद्यार्थी नायात्। प्रधानाध्यापकस्य मनसि विस्मयो बभूव। तेन अन्ये छात्राः अपृच्छिषत—किं सः विद्यार्थी व्याधिग्रस्तः? सः कथं न आगतः। तस्य

८७. गुणों का सम्मान

एक सेठ की दुकान पर दो व्यक्ति कार्य करते थे, एक का नाम था—गोरालाल और एक का नाम था कालूलाल। सेठ ने दोनों के स्वभाव की परीक्षा का विचार किया। एक बार गोरालाल किसी कार्य के लिए बाहर गया। तब सेठ ने कालूलाल से कहा—यह गोरालाल धूर्त प्रतीत होता है। वह मेरे सामने तेरी निंदा करता था। कालूलाल ने कहा—गोरालाल तो सज्जन है। मेरे जीवन में बहुत से दोष हैं, मैं उन्हें दूर करने का प्रयास करूंगा। सेठ ने कहा—तू भी गोरालाल के दोष बता। कालूलाल ने कहा—किसी के दोषों का वर्णन कर मैं मेरी जीभ को अशुद्ध नहीं करना चाहता।

एक बार कालूलाल किसी कार्य के लिए बाहर गया। तब सेठ ने कहा—गोरालाल यह कालूलाल बहुत मायावी हैं। इसकी कार्यक्षमता भी नहीं है। गोरालाल तत्काल बोला—आपका कथन सही है। इसमें अनेक अवगुण हैं। यह योग्य भी नहीं है। इसे गाय भैसों की सेवा में नियुक्त कर दें।

यह सुनते ही सेठ क्रोधारुण हो गया। उसने कहा—मैंने तुम दोनों के स्वभाव की परीक्षा कर ली। वह गुणग्राहक है, तुम दोषदर्शी हो। मैं तुझे पशुओं की सेवा में नियुक्त करता हूँ, उसे मेरी सेवा में नियुक्त करता हूँ।

गुणों का आदर करना चाहिये, सेठ ने ऐसा ही किया।

८८. नियमितता

एक विद्यार्थी बहुत अनुशासित और नियमित था। वह निश्चित समय पर प्रार्थना सभा में आता था। उसके नियमित व्यवहार से प्रधानाध्यापक हर्षित था। एक बार प्रार्थना का समय हो गया। वह विद्यार्थी नहीं पहुंचा। प्रधानाध्यापक को विस्मय हुआ। उसने अन्य छात्रों ने उसके संबंध में पूछा—क्या वह अस्वस्थ हो गया? वह क्यों नहीं आया? उसकी प्रतीक्षा में

प्रतीक्षायां प्रार्थना नारब्धा। द्वित्रिक्षणपश्चात् सः विद्यार्थी समुपस्थितो जातः। प्रधानाध्यापकेन विलम्बस्य कारणं जिज्ञासितम्। तदा तेन संसदि स्पष्टीकृतम्—विद्यालयस्य घटिका पञ्चक्षणम् अग्रेऽस्ति। तेन स्वस्य घटिका प्रदर्शिता। प्रधानाध्यापकः तस्य स्पष्टीकरणेन संतुष्टोऽभवत्। सभायां सः छात्रो भूरिभूरि प्रशंसितः।

नियमितता सर्वेषां कृते अनुसर्तव्या।

८९. त्रयो गुरवः

जापानराष्ट्रस्य एकयोषिता महात्मने गांधीमहोदयाय त्रयाणां वनौकसां मूर्त्तयः उपढौकिताः। एकस्य वनौकसो मुखे हस्तौ अभूताम्। एकस्य नेत्रयोरस्ताम्। एकस्य कर्णयोरभूताम्। केनचित् तिसृणां प्रतिमानां रहस्यं जिज्ञासितम्—तदा महात्मना व्याख्यातम्। यस्य मुखे हस्तौ स कपिः संदिशति—अनुचितमशुद्धं न वाच्यं, यस्य नयनयोर्हस्तौ स्तः सः संदिशति—विकारभावेन किमपि न वीक्षितव्यम्। यस्य प्लवङ्गस्य श्रोत्रयोः हस्तौ स प्रेरयति कस्यापि निन्दा न श्रोतव्या।

महात्मना कथितं—एते त्रयो वानराः मम गुरवः।

त्रयाणां वनौकसां संदेशाः सकलैः ज्ञातव्या, अनुसर्तव्या।

९०. राक्षसः कोऽस्ति

एको महात्मा रामकथायाः वाचनं विहितवान्। परःशताः लोकाः कथायाः रसास्वादनम् चक्रिरे। कथायाः अन्तिमे दिने एकः श्रोता सभाया-मुत्थितः। तेन कथितम्—महात्मन्! मम एका जिज्ञासा विद्यते। महात्मना स्वीकृतिः प्रदत्ता। तेन पृष्टम्—मया प्रतिदिनं कथा अश्रावि। परं मया नावसितम्—राक्षसः कोभूत्—रामो वा रावणो वा। तस्य प्रश्नमाकर्ण्य सर्वेऽहसन्। महात्मोदितवान्—राक्षसो न रामो, न रावणः। एको राक्षसोऽहमस्मि। येन त्वाद्दृशेषु श्रावकेषु रामकथा कृता। द्वितीयो राक्षसः त्वमसि, येन दीर्घकालावधि रामकथां श्रुत्वा इत्यपि न ज्ञातम्।

ये श्रेतारो ध्यानेन शृण्वन्ति तेषां मध्ये एव रामकथा सारप्रदा।

प्रार्थना शुरू नहीं की। इतने में वह आ गया। प्रधानाध्यापक ने विलंब का कारण पूछा—उसने कहा—विद्यालय की घड़ी तीन चार मिनट आगे है। उसने अपनी घड़ी दिखाई, प्रधानाध्यापक संतुष्ट हुआ। उसने सभा में उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

नियमितता का सबको अनुसरण करना चाहिये।

८९. तीन गुरु

जापान की एक महिला ने महात्मा गांधी को तीन बंदरों की मूर्तियां उपहार दी। एक बंदर के मुख पर हाथ थे। एक के आंख पर। एक के कान पर हाथ थे। किसी ने इन तीनों मूर्तियों का रहस्य जानना चाहा। गांधीजी ने कहा—जिसके मुख पर हाथ है वह बुरा नहीं बोलने का संदेश देता है। जिसकी आंखों पर हाथ है वह बुरा नहीं देखने का संदेश देता है और जिस बंदर के कानों पर हाथ है वह किसी की निंदा नहीं सुनने की प्रेरणा देता है।

गांधी ने कहा—ये तीन बंदर मेरे गुरु हैं। इन तीनों के संदेश को सबके लिए जानना और जीवन में अपनाना जरूरी है।

९०. राक्षस कौन है ?

एक महात्मा ने राम कथा का वाचन किया। सैकड़ों व्यक्तियों ने कथा का रसास्वादन किया। कथा के अंतिम दिन एक व्यक्ति ने महात्मा से सवाल किया। उसने कहा—महात्मन्! मेरी एक जिज्ञासा है। उसे स्वीकृति मिल गई। उसने कहा—मैंने प्रतिदिन कथा सुनी, पर मैं यह नहीं समझा—राक्षस कौन था? राम था या रावण था। उसका प्रश्न सुनकर सब हंसने लगे। महात्मा ने कहा—राक्षस न राम था, न रावण था। राक्षस एक तो मैं हूँ, जो मैंने तेरे जैसे श्रोताओं को राम कथा सुनाई। एक राक्षस तू है जो इतने दिन सुनकर यह भी नहीं जान पाया कि राक्षस कौन है ?

जो ध्यान से सुने और उससे ज्ञान ग्रहण करे उनमें ही रामकथा करना सार्थक है।

९१. रामस्य गवेषणा

महासत्या सीतया भक्ताय हनुमते एको मुक्ताहारोऽर्पितः। हनुमान् मुक्ताफलानि त्रोटयित्वा ददर्श। तदा सीतयोदितम्—भक्त! मौक्तिकेषु किमन्वेषयसि? तदा पवनसुतेनाऽवाचि—अहं मुक्ताफलेषु राम मन्विष्यामि। सीतयाऽभाणि—एषु रामं कथम् उपलप्स्यसे? यस्मिन् रामो न विद्यते, सः हारो मह्यं न रोचते।

रामस्य तात्पर्यं धर्मः, धर्मविहीना समृद्धिः न कल्याणकृत्।

९२. श्रवणस्य सारम्

द्वौ छात्रौ सहपाठिनौ आस्ताम्। एकदा द्वयोः मध्ये परस्परं कलहो जातः। द्वाभ्यां परस्परं गाल्याः प्रयोगो व्यधायि। सार्यकाले एकः छात्रः द्वितीयस्य सद्ने समागत्य क्षमायाचनां कृतवान्। तेनोदितम्—कल्येऽहं सत्सङ्गे गतवान्। तत्र एकेन महात्मना निर्दिष्टम्—दिनस्य कोपः दिनान्तात् पूर्वमेव तथा निशाया कोपः निशान्तात् पूर्वमेव अपनेतव्यः। अहं प्रातःकालस्य कोपमपनेतुमायातः। त्वं मां क्षमस्व। सः छात्रोऽपि तस्योद्गारान् निशम्य प्रमुदितो जातः। तेनापि आगन्तुकच्छात्रेण सह क्षमा याचिता।

यत् ज्ञानं सत्सङ्गे श्रूयते, तदनुसर्त्तव्यम्।

११. राम की खोज

महासती सीता ने भक्त हनुमान को एक मोतियों का हार दिया। हनुमान हार के एक-एक मोती को चीरकर देखने लगा। सीता ने कहा—भक्त! मोतियों में क्या देखते हों? मैं इनमें राम देख रहा हूँ। सीता बोली—इनमें राम कहां से मिलेंगे। भक्त हनुमान ने कहा—अगर इनमें राम नहीं है तो मुझे यह हार नहीं चाहिए।

राम का तात्पर्य धर्म है। धर्म शून्य समृद्धि कल्याणकारी नहीं है।

१२. सुनने का सार

दो छात्र सहपाठी थे। एक बार दोनों में परस्पर कलह हो गया। दोनों ने एक दूसरे के लिए गालियों का प्रयोग किया। एक छात्र सायंकाल दूसरे छात्र के घर गया और उसने अपने सहपाठी से क्षमायाचना की। उसने कहा—कल मैंने एक महात्मा का उपदेश सुना था। उसने कहा—दिन का क्रोध दिन छुपने के पहले तथा रात्रि का क्रोध रात बीतने के पहले शांत कर देना चाहिए। मैं प्रातः काल का क्रोध शान्त करने आया हूँ। तुम मुझे क्षमा कर दो। वह छात्र भी उसके उद्गार सुनकर भावविभोर हो गया। उसने भी आगन्तुक छात्र से क्षमायाचना की।

सत्संग में जो ज्ञान सुना जाता है, उसका अनुसरण करना चाहिए।

१३. कज्जलस्य कृष्णता

भूपेन राजसभायामेकः प्रश्नः उपस्थितो विहितः। स्नेहप्रियो रक्तः, वर्तिका श्वेता, तैलं पीतम्, तथापि कज्जलं कृष्णं कथम्? अस्मिन् विषये अनेकैः सभासद्भिः स्वविचाराः प्रकटीकृताः। उपसंहारे एकेन अनुभविना मनीषिणोदितम्—यादृशः आहारः तादृशः उद्गारः, इति सुभाषितं सुविश्रुतम्। प्रदीपोऽन्धकारमत्ति, अतः सोऽसितमञ्जनमुदिरति।

१४. बीरबलस्य रूपम्

सम्राट् बीरबलमकथयत्—मम राज्यसभायां तव रूपं सर्वतो विकृतम् दृश्यते। बीरबलेन भणितम्—यदा भगवान् विद्या-बुद्धि-रूपादीन् ददे, तदा भवन्तः सकलाः रूपं ग्रहीतुं संलग्नाः। अहं बुद्धिमादातुं अनुरतः।

अतो बुद्धेः निधानं मयोपलब्धम्, रूपस्य निधानं भवता प्रापि।

बीरबलस्य उत्तरेण सम्राट् निरुत्तरो जातः।

१५. कः सुखी

एको विश्रुतो महात्मा विशालायां परिषदि प्रवचनं व्यधिष्ट। परः शताः लोकाः स्थिरचेतसा अश्रौषुः। केनचिद् जिज्ञासितम्—सभायां कः सर्वतः सुखी। तदा सभायां क्षोणीपः, सचिवः, अनेके विशिष्टाः जनाः अभूवन्। महात्मा प्रोक्तवान्—यः साधारणपरिधाने सर्वेषां पृष्ठे लौहकारः आसीनोऽस्ति, सः सर्वतः सुखी अस्ति। इदं निशम्य सर्वा परिषद् विस्मयाब्धौ निमग्ना। महात्मना श्रोतृणां मनःस्थितिमवबुद्ध्य कथितम्—यूयं मा संशेध्वम्, मा विस्मयध्वम्? अहं प्रवचनोपसंहारे युष्माकं संशयम्, विस्मयं च निराकरिष्यामि।

१३. काजल की कृष्णता

राजा ने राजसभा में प्रश्न उपस्थित किया—दीपक लाल है, वृत्तिका सफेद है, तेल पीला है, फिर भी काजल काला क्यों है? इस विषय पर अनेक विद्वानों ने विचार प्रगट किए। एक अनुभवी विद्वान ने उपसंहार में कहा—जैसा आहार होता है वैसा उद्गार होता है, यह सुभाषित प्रसिद्ध है। दीपक काले अंधकार का भोजन करता है, इसलिए उद्गार के रूप में उसका काजल भी काला होता है।

१४. बीरबल का रूप

बादशाह ने बीरबल से कहा—मेरी राजसभा में तेरा रूप सबसे भद्दा है। उसने कहा—जब भगवान धन, बुद्धि, रूप आदि का वितरण कर रहे थे, तब आप लोग रूप मांगने में संलग्न थे तब मैं बुद्धि का वैभव ग्रहण करने में लीन हो गया। इसलिए बुद्धि का भण्डार मुझे मिल गया, रूप का खजाना आपको मिल गया। बीरबल का उत्तर सुनकर सम्राट् निरुत्तर हो गए।

१५. सुखी कौन ?

एक विशाल परिषद् में महात्मा प्रवचन कर रहे थे। सैकड़ों व्यक्ति स्थिर मन से प्रवचन सुन रहे थे। किसी ने पूछा—इस सभा में सुखी कौन है? उस सभा में राजा, मंत्री व अनेक विशिष्ट जन उपस्थित थे। महात्मा ने कहा—साधारण परिधान में सबसे पीछे जो लोहार बैठा है, वह सबसे सुखी है। यह सुनकर सारी परिषद् विस्मित हो गई। महात्मा ने सारी सभा की मनस्थिति देखकर कहा—तुम लोग संशय मत करो, विस्मय मत करो। मैं प्रवचन के उपसंहार में तुम्हारे संशय और विस्मय का निराकरण करूंगा।

प्रवचनसमाप्तौ महात्मना उद्घोषितं यदि कोपि वरदानमिप्सति, तर्हि याचितुमर्हः। सर्वप्रथमं राज्ञा सूनोर्वरदानं याचितम्। सर्वे लोकाः अहमहमिकया वरदानानि याचितवन्तः। यदा पृष्ठे आसीनस्य लोहकारस्य क्रमः समागतः तदा तेनोदितम्—महात्मन्! मया किमपि न काम्यते, अहं मम जीवने संतुष्टोऽस्मि।

महात्मा अवोचत्—यस्य कापि कामना न भवति, सः सुखी भवति।

१६. ईश्वरो हसति

धरणीशेन सभायां प्रश्नः पृष्ठः—ईश्वरः कदा हसति? केनापि उत्तरं न दत्तम्। तदा महीपेनामात्यो निर्दिष्टः—त्वया दिनत्रये अस्य उत्तरं दातव्यम्। यदि उत्तरं न दास्यसि, तर्हि मन्त्रिपदात् मुक्तं करिष्यामि।

सचिवो गेहमागच्छत्। परं तस्य मानसं चिन्ताकुलमभूत्। तदा तस्य कनिष्ठेन तनयेन जिज्ञासितम्—तात! भवतामौदासीन्यस्य किं कारणम्? जनकेन क्षितिपस्य निर्देशः तस्मै ज्ञापितः। अङ्गजेन न्यवेदि—भवान् व्यर्थं चिन्तातुरः। अहमिमं प्रश्नमुत्तरिष्यामि।

तनयो वपत्रा सह राजसभायां जगाम। महीपेनामात्योऽपृच्छि—ईश्वरः कदा हसति? तदा पुत्रेण साहसेनावाचि—पार्थिव! अहं प्रतिवच्मि। ईश्वरः त्रिषु प्रसङ्गेषु हसति।

१. यदा मानवो दर्पणे आननमालोक्य गर्वति।
२. यदा स्वमतिरिक्तं मत्त्वेतरान् तिरस्करोति।
३. यदा मानवो मृत्युं विस्मरति।

तस्य उत्तराणि संश्रुत्य वसुधेशः प्रसन्नो जातः। तेन उद्घोषितम्—अस्मात् सचिवस्य पश्चात् अस्य अयं सूनुः मन्त्रिपदमलंकरिष्यति।

१७. सहवासी विजानीयात्

प्रवचन की समाप्ति पर महात्मा ने कहा—यदि किसी को वरदान मांगना हो तो मांग सकते हो। सर्वप्रथम राजा ने पुत्र का वरदान मांगा। उसके बाद सभी लोगों ने आगे से आगे नाना प्रकार के वरदान मांगे। उसके बाद महात्मा ने उस लोहार से पूछा। उसने कहा—महात्मन्! मैं संतुष्ट हूं, मेरी कोई कामना नहीं है।

महात्मा ने कहा—जिसकी कोई इच्छा नहीं होती, वह सुखी है।

१६. ईश्वर हंसता है

राजा ने सभा में प्रश्न किया—ईश्वर कब हंसता है? सभा में उपस्थित सभी लोग मौन रहे। तब राजा ने मंत्री को निर्देश दिया—तुम्हें तीन दिनों में इस प्रश्न का उत्तर देना है। यदि उत्तर नहीं दोगे तो मैं पद से हटा दूंगा। सचिव घर आ गया, पर उसका मानस चिंताकुल था। उसके छोटे पुत्र ने जिज्ञासा की। तात! आपकी उदासीनता का क्या कारण है? मंत्री ने उसे राजा का निर्देश बताया। उस पुत्र ने कहा—आप व्यर्थ ही चिंतातुर हैं। मैं इस प्रश्न का उत्तर दूंगा।

बेटा पिता के साथ राजसभा में गया। भूपति ने सचिव से पूछा—ईश्वर कब हंसता है? तब पुत्र ने साहस से कहा—राजन्! मैं इस प्रश्न का उत्तर देता हूं, ईश्वर तीन प्रसंगों में हंसता है—

१. जब मनुष्य दर्पण में अपना मुख देखकर अभिमान करता है।
२. जब कोई अपने को बड़ा समझकर दूसरों का तिरस्कार करता है।
३. जब मानव मृत्यु को भूलता है। उसके उत्तर से नरपति बहुत प्रसन्न हुआ। उसने घोषणा की—इस मंत्री के बाद इसका यह बेटा मंत्री बनेगा।

यदा रामो सीतालक्ष्मणाभ्यां सह अरण्यवासे भ्रमन्नासीत्, तदाऽध्वनि पम्पापद्माकरः आगतः। तत्र तटाके दीर्घजङ्घाः शनैः शनैः नीचैः दर्शं दर्शं ब्रजन्तः आसन्। तान् वीक्ष्य रामेण सुमित्रानन्दनोऽभाणि—पम्पासरोवरे श्वेतवायसाः कियन्तो धार्मिकाः। जीवहिंसां वर्जयितुं भूम्यां विलोकं विलोकं गच्छन्ति।

तदा पद्माकरस्य मत्स्यैः सव्यथमुद्गीर्णम्—हे राम! भवताऽपि एते मायाविनो बकाः प्रशस्यन्ते, एतैस्माकं कुलं प्रणष्टम्। ये सहवासिनो भवन्ति, त एव सहवासिनां चारित्रं जानन्ति।

१८. त्रयो भृत्याः

एकस्य पार्थिवस्य त्रयो भृत्याः आसन्। एकदा सः तानपृच्छत्। मम कूर्चं युष्माकं कूर्चं चेत् युगपत् प्रज्वलेत्, तदा प्राक् कस्य कूर्चं यूयं निर्वापयथ। प्रथमोऽवोचत्—प्राक् मदीयं निर्वाप्स्यामि। द्वितीयोऽवोचत्—भवदीयं निर्वाप्स्यामि, तृतीयोऽवोचत्—एकेन करेण भवदीयं, एकेन मदीयं श्मश्रूं निर्वाप्स्यामि।

भूमिशेन निर्णीतम्—प्रथमः भृत्यः स्वार्थी, द्वितीयः चाटुकारः, तृतीयो यथार्थवादी वेविद्यते।

यो यथार्थवादी स एव प्रशंसार्हः।

१७. सहवासी जानता है

जब राम-लक्ष्मण और सीता के साथ वनवास में भ्रमण कर रहे थे तब मार्ग में पम्पा नाम का सरोवर आया। उस तालब में बगुले नीचे देख-देख कर धीरे-धीरे चल रहे थे। उन्हें देखकर राम ने लक्ष्मण को कहा—पंपा सरोवर के ये बगुले कितने धार्मिक हैं ये जीव हिंसा को टालने के लिए भूमी पर देख-देख कर चल रहे हैं। तब तालाब की मछलियां खेद से बोली—हे राम! आप भी इन मायावी बगुलों की प्रशंसा करते हैं। इन्होंने हमारे कुल का (मछलियों का) विनाश कर दिया।

हे राम! साथ में रहने वाला ही साथ में रहने वाले का चरित्र जानता है।

१८. तीन कर्मचारी

एक राजा की सेवा में तीन कर्मचारी थे। एक बार उसने तीनों से प्रश्न किया—मेरी और तुम्हारी दाढ़ी साथ में जले तो पहले किसकी दाढ़ी बुझाओगे। पहले ने कहा—पहले मैं मेरी बुझाऊंगा। दूसरे ने कहा—मैं आपकी पहले बुझाऊंगा। तीसरे ने कहा—एक हाथमें मेरी और एक हाथ से आपकी बुझाऊंगा। भूपति ने निर्णय किया—पहला स्वार्थी है, दूसरा चाटुकार है। तीसरा यथार्थवादी है। जो यथार्थवादी होता है वह प्रशंसनीय है।

१९. वाक्-चातुर्यम्

एको जीर्णम्लानवसनो निःश्रीको जनः राजसभायामागतः। स धीधनोऽभूत्। क्षितिपतिः तं म्लानमुखमालोक्य पप्रच्छ—त्वं कोऽसि? तेन प्रत्युक्तम्—अहं भवदीयो भ्राता। इदं संश्रुत्य नरेशः कोपारुणोऽजनि। मूर्ख! मिथ्या भाषसे? अहं भावत्को मातृस्वस्रीयो बन्धुः। भूपोऽवदत्—मम मातुः भगिनी नास्ति। कोविदेन कथितम्—भवता मम कथनस्य मर्म नावगतम्। अहं मम जल्पनं स्पष्टीकरोमि—

“आपदा च मम माता, तव माता च सम्पदा। आपदा-सम्पदे भगिनी तेनाहं तव बान्धवः।” भूपतिस्तस्य मनीषिणः वाक्चातुर्यपूर्णं वैदुष्येन प्रभावितो बभूव। प्रसन्नीभूय प्राज्ञः पुरस्कृतः, सः ततो प्रहृष्य प्रस्थितः।

१००. बुद्धि-परीक्षा

एको धीधनो राजसभायां समुपस्थितः। तस्य वाक्चातुर्यम्, बुद्धि कौशलं सुविश्रुतम्। भूपेन तस्य बुद्धिकौशलं परीक्षितुं प्रश्नः कृतः—मम करतले कुन्तलाः कथं नो? तेन प्रत्युक्तम्—भवद्भिः पाणिभ्यां प्रचुरं दानं प्रदत्तम्, तेन तौ घृष्टौ। तव करतले कथं न? राजन्! मया दानं बहुलं गृहीतम्, तेन हस्तौ घृष्टौ। अन्येषां करतले कचाः कथं न? मह्यं दीयमानं दानं दर्शदर्शं पश्चात्तापे हस्तौ घृष्टौ, अतः कुन्तला न।

सः प्राज्ञः नरेशस्य परीक्षायाम् उत्तीर्णः।

११. वाक् चातुर्य

एक फटे और मैले कपड़ों वाला व्यक्ति राजसभा में आया। वह बुद्धिमान था। राजा ने उस म्लान मुख वाले व्यक्ति को पूछा—तुम कौन हो? उसने कहा—मैं आपका भाई हूँ। यह सुनकर राजा क्रोधित हुआ। मूर्ख! झूठ बोलते हो। उसने कहा—भूपति! मैं आपकी मौसी का बेटा भाई हूँ। राजा ने कहा—मेरी माँ के कोई बहिन है ही नहीं। उस आगन्तुक विद्वान् ने कहा—आप मेरे कहने का मर्म नहीं समझे। मैं अपने कथन का स्पष्टीकरण करता हूँ—

आपत्ति मेरी माँ है, संपत्ति आपकी माँ है। आपत्ति और संपत्ति दोनों बहिनें हैं। इस दृष्टि से आप मेरे भाई हैं। राजा उसके वाक् चातुर्य पूर्ण विद्वत्ता से प्रभावित हुआ। उसने विद्वान को प्रसन्न होकर पुरस्कृत किया। वह विद्वान हर्षित होकर वहाँ से चला गया।

१००. बुद्धि-परीक्षा

एक विद्वान राजसभा में आया। उसका बुद्धि कौशल प्रसिद्ध था। राजा ने उसकी बुद्धि-परीक्षा करने के लिए प्रश्न पूछा—मेरी हथेली में केश क्यों नहीं हैं? उसने उत्तर दिया—आपने दान बहुत दिया—इससे हाथ घिस गए। तुम्हारे हाथ में क्यों नहीं? राजन्! मैंने दान बहुत ग्रहण किया, इससे मेरे हाथ भी घिस गए। दूसरों के हाथ में बाल क्यों नहीं हैं? मुझे दान लेते देख अफसोस करते-करते उनके हाथ भी घिस गए, अतः बाल नहीं हैं।

वह विद्वान् राजा की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया।?

१०१. उपदेशस्य प्रभावः

एको बालो गुडं बहुलमखादत्। स जनन्या बहु निषिद्धः। परं तेन गुडाशनं न परित्यक्तम्। तदा तस्या जनयित्री एकमहात्मनः सन्निधौ तमानीतवती। तथा महात्मने निवेदितम्—अयं मम तनयः गुडं प्रचुरमत्ति। महात्मनाऽभाणि-सप्ताहस्य पश्चात् पुनः अयमानेतव्यः। सप्ताहस्य पश्चात् सा योषित् सबाला महात्मनः आश्रमे आगतवती। स्वस्याः समस्या ज्ञापिता। महात्मा बालकमुपादिशत्—त्वं गुडं बहु खादसि, इदं स्वास्थ्यस्य कृते हानिकरम्। इमां प्रवृत्तिं परित्यज। बालकेन कथितम्—अहं भवतां प्रेरणया गुडानशनस्य प्रतिज्ञां विदधे।

बालकस्य जननी अवोचत्—महात्मन्! भवता सप्ताहस्य विलम्बः कथं कृतः? महात्मनोदितम्—प्रागहमपि गुडं खादितवान्। सप्ताहे मयाऽपि गुडाशनं परित्यक्तम्। उपदेशको यदि दुष्प्रवृत्तिमाचरति तदा तस्य वाण्याः प्रभावः न स्यात्। मया गुडः परित्यक्तः, अतः ममोपदेशस्य प्रभावोऽजनि।

१०१. उपदेश का प्रभाव

एक बालक गुड़ बहुत खाता था। उसकी माँ ने बहुत समझाया, पर उसने गुड़ खाना नहीं छोड़ा। तब माँ उसे एक महात्मा के पास लेकर गई। उसने महात्मा से निवेदन किया—यह मेरा पुत्र बहुत गुड़ खाता है। महात्मा ने कहा—सात दिन बाद इसे मेरे पास लाना। वह सप्ताह बाद बालक के साथ महात्मा के आश्रम में आई और अपनी समस्या बताई। महात्मा ने बालक से कहा—तुम अधिक गुड़ खाते हो यह स्वास्थ्य के लिए खराब है, इस आदत को छोड़ दो। बालक ने कहा—मैं आपकी प्रेरणा से ऐसा संकल्प करता हूँ कि अब मैं गुड़ नहीं खाऊँगा।

लड़के की माँ ने कहा—आपने सप्ताह भर की देरी क्यों की? (यही बात आप सात दिन पहले भी कह सकते थे, उस दिन आपने यह उपदेश क्यों नहीं दिया।)

महात्मा ने कहा—बहिन! पहले मैं भी गुड़ खाता था। सप्ताह तक मैंने भी गुड़ खाना छोड़ा। उसी के उपदेश का प्रभाव होता है जो स्वयं बुराई से मुक्त होता है। मैंने गुड़ खाना छोड़ा इसलिए मेरे उपदेश का प्रभाव हुआ।